Preamble – Chapter VIII - The Yog of the eternal God (Attaining the Supreme) (Aksar Brahman yog)

In this chapter, Shree Krishna briefly describes several significant concepts and terms that the Upanishads expound in detail. He also explains what decides the destination of the soul after death. He says that if we remember God at the time of death, we can definitely attain Him. Therefore, alongside doing our daily works, we must always practice thinking of God. We can do this by thinking of His Qualities, Attributes, Virtues, etc. A persistent yogic meditation upon God by chanting His Names is also a good practice. Through exclusive devotion, when our mind is perfectly absorbed in Him, we will elevate from the material dimension to the spiritual realm.

Shree Krishna then talks about the various abodes in the material realm and the cycle of creation. He further explains how the multitudes of beings manifest on these abodes, and at the time of dissolution, everything absorbs back into Him.

However, the divine Abode of God is untouched by this cycle of creation and dissolution. Those who progress on the path of light finally reach the divine abode and never return to the material world. Whereas those fallen souls who tread the path of darkness endlessly keep transmigrating in the cycle of birth, old age, sickness, and death.

(Courtesy (preamble) – The Songs of GOD – By Swami Mukundananda

प्रस्तावना – अष्टमोऽध्याय - अक्षर ब्रह्म योग

सातवे अध्याय में परमात्मा ने अपने होने के रहस्य को बताना शुरू किया और हम ने जाना कि यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड परा प्रकृति और अपरा प्रकृति अर्थात जड़-चेतन के स्वरूप में परमात्मा के रूप में ही है। परमात्मा क्या है? इसे परमात्मा ने अपने को सम्पूर्ण जगत में व्याप्त, अनादि, अनन्त, नित्य स्वरूप को बताया, जिस से यह ब्रह्मांड रचा है, उस के सगुण एवम निर्गुण स्वरूप को समझा। अतः यह समस्त जगत ही परमात्मा में समाया हुआ है। फिर अंत मे ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदेव एवम अधियज्ञ तथा प्रयाण काल मे ब्रह्म को जानने वाले, ब्रह्म को ही प्राप्त हो जाते है। भगवान के इस रहस्य को न समझ पाने के आठवें अध्याय का प्रारम्भ अर्जुन के इन के उत्तर देने के प्रश्न करता है, जिसे परमात्मा विस्तार से समझाना शुरू करते है।

अक्षर एवम ब्रह्म दोनों शब्द भगवान के सगुण एवम निर्गुण दोनों ही स्वरूपो का वाचक है तथा भगवान का नाम ॐ है उसे अक्षर एवम ब्रह्म भी कहते है। इस अध्याय में भगवान के सगुण एवम निर्गुण रूप का और ओंकार का वर्णन है, इस लिये इस अध्याय का नाम **अक्षर ब्रह्म योग** रखा गया है।

इस अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन ने ब्रह्म, अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत, अधियज्ञ एवम प्रयाण काल मे परमात्मा के स्मरण को ले कर सात प्रश्न किये थे। इस मे अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर के साथ प्राण त्याग के समय प्रभु चिंतन, पुनः जन्म से मुक्ति एवम ईश्वर के ब्रह्म स्वरूप का वर्णन हम पढेंगे। ईश्वर की आराधना करने वाले हर योगी के लिये यह अध्याय ईश्वर के स्वरूप को समझने के लिये महत्व पूर्ण है।

बाह्य सृष्टि के अवलोकन से उस के वार्ता की कल्पना अनेक लोग अनेक रीतियों से किया करते है। 1) अधिभूत - यह मानते है सृष्टि के सब पदार्थ पँचमहाभूतो के ही विकार है और इन पँचमहाभूतो को छोड़ मूल में दूसरा कोई तत्व नही है। 2) अधियज्ञ - कई लोग मानते है गीता के चौथे अध्याय के वर्णन के अनुसार समस्त जगत यज्ञ से हुआ है, इसलिये परमेश्वर यज्ञ नारायण रूपी है और यज्ञ से उस की पूजा होती है। 3) अधिदेवत- कुछ लोगो का कहना है, कि जड़पदार्थ स्वयं सृष्टि के व्यापार नहीं करते, किन्तु उन में से प्रत्येक में कोई न कोई सचेतन पुरुष या देवता रहते है, जो कि इन व्यवहारों को किया करते है, इसलिये हमे उन देवताओ की आराधना करनी चाहिए। जैसे पांच भौतिक सूर्य के गोले में सूर्य नाम का जो पुरुष है वही प्रकाश देने वगेरह का काम किया करता है, अतएव वही उपास्थ है। 4) अध्यात्म - कुछ लोगो का मानना है कि प्रत्येक पदार्थ में भिन्न भिन्न देवताओ की बजाय आत्मा का निवास है जो उस का मूल एवम वास्तविक रूप है। यह आत्मा भी पृथक पृथक है और असंख्य है।

शब्द अधि का अर्थ उस मे रहने वाला होता है। अब हम परमात्मा के इस तत्व का ज्ञान आंठवे अध्याय में करेंगे।

आठवें अध्याय की संज्ञा अक्षर ब्रह्मयोग 28 श्लोक तक ही सीमित है। उपनिषदों में अक्षर विद्या का विस्तार हुआ। गीता में उस अक्षरविद्या का सार कह दिया गया है-अक्षर ब्रह्म परमं, अर्थात् परब्रह्म की संज्ञा अक्षर है। मनुष्य, अर्थात् जीव और शरीर की संयुक्त रचना का ही नाम अध्यात्म है। जीवसंयुक्त भौतिक देह की संज्ञा क्षर है और केवल शक्तितत्व की संज्ञा आधिदैवक है। देह के भीतर जीव, ईश्वर तथा भूत ये तीन शक्तियाँ मिलकर जिस प्रकार कार्य करती हैं उसे अधियज्ञ कहते हैं। गीताकार ने दो श्लोकों में (८।३-४) इन छह पारिभाषाओं का स्वरूप बाँध दिया है। गीता के शब्दों में ॐ एकाक्षर ब्रह्म हैं।

सांख्य में अव्यक्त प्रकृति के अक्षर कहा गया है किंतु वेदान्त का ब्रह्म इस अव्यक्त और अक्षर प्रकृति से भी परे का है, इसलिये इसे परम-ब्रह्म कहा गया है। अतः परम्- ब्रह्म का अर्थ प्रकृति और ब्रह्म दोनो मिला कर होना चाहिए। यह दृश्य सृष्टि नामरूपात्मक विनाशी स्वरूप क्षर है। समस्त देह अर्थात अधिदेह एवम समस्त यज्ञ के भोक्ता स्वरूप अधियज्ञ पूर्ण ब्रह्म ही है।

अध्याय सात से ब्रह्म ज्ञान शुरू हो जाता है, जिसे पढ़ना, समझना और अनुभव करना, अल्पबुद्धि वाले भक्तों के दुष्कर है। केवल चौथे प्रकार् के ज्ञानी भक्त ही इसे समझ पाते है। इस को समझने के लिये सात्विक मन, एकाग्रता एवम भाषा पर अधिक ध्यान देना होगा। हम इस को समझने का प्रयास करते

है। मेरा निजी मत है कि अनेक मीमांसक अपने अपने व्यक्तित्व एवम विचारधारा से इन अध्याय का विवेचन करते है, जिसे सम्मलित रूप से यहाँ लिखने का प्रयास करते है।

जैसे ब्रह्म ब्रह्म कहने से कोई ब्रह्म नही हो जाता, वैसे ही गीता पढ़ने से कोई ज्ञानी नही हो जाता। यह अनुभव अभ्यास एवम चित्त के निरोध से ही होता है। अतः जब तक चित्त एकाग्र हो कर ज्ञान को ग्रहण नही करता, तब तक अज्ञान नही मिटता। खाने को भोजन की थाली रखी हो, जब तक खाये नही, भूख नही मिटती। परमात्मा ने अर्जुन को गीता के चुना क्योंकि वह जिज्ञासु एवम कर्मवीर था। इसलिये अर्जुन अपनी कोई शंका रख कर ज्ञान नही प्राप्त कर रहा है, और अब आगे भी वह प्रश्न पूछ कर अपनी शंका ही मिटा लेना चाहते है।

अब कल से इस अध्याय को शुरू करते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। अध्याय 8 प्रस्तावना ।।

॥ श्रीमद्‍भगवद्‍गीता ॥ 8.1॥

अर्जुन उवाच
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥

"Arjuna uvāca,
kiḿ tad brahma kim adhyātmaḿ,
kiḿ karma puruṣottama..।
adhibhūtaḿ ca kiḿ proktam,
adhidaivaḿ kim ucyate"..।।

भावार्थ:

अर्जुन ने पूछा - हे पुरुषोत्तम! यह "ब्रह्म" क्या है? "अध्यात्म" क्या है? "कर्म" क्या है? "अधिभूत" किसे कहते हैं? और "अधिदैव" कौन कहलाते हैं? (१)

Meaning:

Arjuna said:

What is that brahman? What is adhyaatma? What is karma? O supreme person. What is termed as adhibhoota and adhidaiva?

Explanation:

Toward the end of the previous chapter, Shree Krishna had mentioned a few words like **Brahman, karma, adhiyatma, adhibhuta, adhidaiva and adhiyajana. Also, that the enlightened souls are in full consciousness of Him even at the time of their death.** Since its referencing some technical terms and stressed

the need for Arjuna to understand these terms completely so that he could realize Ishvara.

Arjun is curious and wants to know more. In these one and two verses, he puts forth to Shree Krishna seven questions out of which five questions i.e., technical meanings of these words are asked in this verse and rest two in next verses.

Here, Arjuna does a favour to all future students of the Gita by asking Shri Krishna to clearly define these terms.

This chapter is perhaps one of the more philosophical and esoteric chapters of the Gita. It deals with the theme of life after death, something that has not been addressed so far in the Gita. Furthermore, the definition of the aforementioned technical terms is provided, but has been interpreted differently by various commentators, so we need to choose the most clear and straightforward explanation. We will also get a sweeping glimpse of the Gita's view on the origin of the cosmos.

To better understand these technical terms, let us set up an illustration. First, let us quickly look at how a movie projector works. A projector consists of a bright light that shines onto a strip of film. This film strip contains a series of images that are shot by a movie camera or drawn by an animator in case of an animated movie. When the film strip is run through the projector, the images are projected onto the movie screen. The fast speed of the moving images creates the illusion of movement on the screen.

Let us further say that there is an animated movie called "Tom" that shows a day in the life of Tom who is a teenager. Tom wakes up, eats breakfast, goes to school, comes back home, plays with his friends and goes to sleep. It is a very simple movie. Like any other animated movie, it follows a script written by a scriptwriter, and is in fact a sequence of images drawn by an animator.

Now, here's where we have to stretch our thinking. Imagine that by some inexplicable magic, the light that shines on Tom on the film strip begins to think that it is different than the light that shines on the other part of the film strip. It develops an identity of its own. It even begins to think that it is actually waking up, going to school and so on.

The light of the projector has identified itself with Tom. What happens next? We will continue to develop this illustration further in the explanation of the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

गीता के एक से अठारह अध्याय एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े है कि हर अध्याय के अंत मे अगले अध्याय की भूमिका रहती है। परमात्मा को समझने के लिये, सांतवे अध्याय की समाप्ति में प्रयुक्त ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत एवम अधिदेव शब्दो को जानने की उत्सुकता से अर्जुन ने प्रश्न करता है, अर्जुन का गीता में परमात्मा से संवाद हमारी ही शंकाओं का निराकरण करने के लिये है।

ब्रह्म शब्द वेद, ब्रह्मा, निर्गुण, परमात्मा, प्रकृति एवम ओमकार आदि अनेक तत्वों के लिये व्यवहारत होता है अतः ब्रह्म तत्व का सही क्या अर्थ होगा?

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, जीव एवम परमात्मा आदि अनेक तत्वों को अघ्यात्म कहते है इस लिए अध्यात्म को जानना जरूरी है। यह अध्यात्म के नाम से किस तत्व की बात की जा रही है?

कर्म शब्द यहां यज्ञ दानादि शुभ कर्मों का वाचक है या क्रिया मात्र का या फिर ईश्वर की सृष्टि रचना का या फिर प्रारब्ध आदि कर्मो का वाचक है?

इसी प्रकार अधिभूत पंचमहाभूत है या समस्त प्राणी मात्र है या समस्त दृश्य वर्ग या कुछ और?

अधिदेव शब्द से यहां किसी अधिष्ठात देवता विशेष का लक्ष्य है या अदृष्ट, हिरण्यगर्भ, जीव अथवा किसी अन्य का?

जब भी हम किसी से ज्ञान या बात चीत कर रहे होते है तो कुछ शब्दों का यदि अर्थ नही मालूम हो तो उसे स्पष्ट करने की बजाय हम उस को प्रक्षेप, वातावरण एवम उद्देश्य के अनुसार ही ग्रहण कर लेते है। किंतु एक अच्छा पाठक एवम श्रोता कभी भी कोई शंका नही रखता। वो हर छोटी से छोटी बात को पूर्ण गहराई से समझने का प्रयत्न करता है।

अतः अंदाज लगाने की बजाय या फिर बाद में कही और से स्पष्ट कर लेंगे की बजाय वो प्रवक्ता से ही सीधे पूछ लेता है क्योंकि जिस ने शब्द बोला है या उपयोग किया है वो ही सब से बेहतर बता सकता है। इसलिये गीता अध्ययन में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द का वास्तविक अर्थ समझना बहुत जरूरी है। इंग्लिश यदि नही आती तो विदेशी भाषा कह कर बच सकते है किंतु हिंदुस्थानी हो कर भी यदि हिंदी नही आती, तो यह हमारी आलस्य एवम कर्तव्यनिष्ठा की कमी ही मानी जानी चाहिये कि गूढ़तम अर्थ को गहन करने की बजाय हम किसी भी वस्तु के ऊपरी आवरण का ही ज्ञान रखते है और अपने को बुद्धिजीवी कहलाना शुरू कर देते है। ज्ञान तप के समान है, इस के आभूषण बनने के लिये अग्नि में सोने की भांति तपना पढ़ता है। गीता इसी अग्नि की भांति है, जिस का गहन अध्ययन करनेवाला कुंदन की भांति प्रकाशित हो ही जाता है। किंतु हमे इस के प्रथम छह अघ्याय में दिए निष्काम, समभाव, समपर्ण आदि को ग्रहीत कर के ही गहन अध्ययन करना चाहिये। हमे याद रखना चाहिये कि गीता

धृतराष्ट्र ने भी सुनी और अर्जुन ने भी। किन्तु दोनो की मनोभावना के अंतर से दोनो पर असर अलग अलग ही था।

प्रकृति में हमारा जीवन चित्रपट पर चलते चलचित्र की भांति होता है। चलचित्र में पट कथा के लेखन, निर्देशन, प्रदर्शन और संगीत आदि का पूर्व अनुमान होने से अभिनय करने वाले पात्रों को ज्ञात होता है कि उसे आगे क्या करना है किंतु वास्तविक जीवन में पटकथा, सहपात्र, संगीत, स्थान, कर्म और उस का अंत क्या होगा कुछ भी नही पता होने से पात्र की जिदंगी जीना कठिन और दुष्कर तो है ही, यदि अभिनय करने वाला अभिनय के पात्र को अपना ही स्वरूप मान ले तो यह और भी विचित्र परिस्थिति होती है। इसलिए अर्जुन का यह प्रश्न जीवन के रंगमंच पर कहानी, निर्देशन, सहपात्र, स्थान और संगीत को समझने के लिए आवश्यक है। कभी किसी ने यह सोचा है कि हम सब जो मिल कर गीता का अध्ययन कर रहे है उस का सूत्रधार और प्रेरणा देने वाला कौन है। तुलसी दास जी ने सम्पूर्ण रामचरित मानस लिखने का श्रेय हनुमान जी को दिया, वो जैसे जैसे लिखाते रहे, वे वैसे वैसे लिखते रहे।

अध्यात्म के दृष्टिकोण से जन्म मरण, मनन, आदि गूढ़ विषय पर गीता का यह अध्याय अब हमें गहन अध्ययन की ओर ले जाएगा। इसलिये अत्यंत ध्यान पूर्वक इस को समझना जरूरी है।

इस संसार (सृष्टि) के रंग मंच के हम वो अभिनेता है जो अभिनय में अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर, अभिनय पात्र को ही अपना स्वरूप मान रहे है। किंतु आप ने कभी तो अपने आप से यह अवश्य पूछा होगा कि मैं कौन हूं? आप के आस पास या आप के साथ जो घटनाएं होती है, उस का कारक और कारण क्या है? या आप जो कुछ करते या प्राप्त करते है, उस का वास्तविक भोक्ता कौन है? एक कुशल श्रोता की भाँति अर्जुन यह प्रश्न पूछ कर इस अध्याय का आरंभ करते है। किंतु वास्तव में अर्जुन तो आप ही है क्योंकि ज्ञान होते हुए भी अज्ञान में कामना, आसक्ति, ममता, मोह, लोभ, क्रोध एवम राग - द्वेष में इस जीवन को व्यतीत कर के व्यर्थ में गुमा रहे है। हमे हमारे निर्देशक, लेखक, संवाद, संगीत और अभिनय का पता नही है, हमे लगता है या हम मान चुके है कि अज्ञान ही हमारा ज्ञान है, अज्ञान ही हमारा धर्म है और अज्ञान ही हमारे धेय है। **किंतु यह याद रखिये जीवन के कुरुक्षेत्र में आप ही मोक्ष के प्रेरित हो गीता पठन कर रहे है अतः भगवान कृष्ण द्वारा कहे गए किसी भी बिंदु पर कोई भी संशय नही रहना चाहिए। संशय से ज्ञान नही मिलता, ज्ञान तभी मिलेगा जब श्रद्धा और विश्वास होगा। गीता अध्ययन का यह प्रयास परमात्मा को प्राप्त करने एवम सार्थक जीवन जीने का कभी भी निरर्थक नही होगा, ऐसा हम पहले ही भगवान द्वारा सुन चुके है।** अर्जुन आगे भी क्या पूछते है उसे हम अगले श्लोक में पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.01।।

॥ श्रीमद्‍भगवद्‍गीता ॥ 8.2॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः॥

"adhiyajñaḥ kathaṁ ko 'tra,
dehe 'smin madhusūdana.. l

prayāṇa-kāle ca kathaḿ,
jñeyo 'si niyatātmabhiḥ"..।।

भावार्थ:

हे मधुसूदन! यहाँ "अधियज्ञ" कौन है? और वह इस शरीर में किस प्रकार स्थित रहता है? और शरीर के अन्त समय में आत्म-संयमी (योग-युक्त) मनुष्यों द्वारा आपको किस प्रकार जाना जाता हैं? (२)

Meaning:

Who is adhiyagna and how is he (established) in this body, O Madhosoodana? How are (you) known by a self-controlled person, at the time of departure?

Explanation:

Arjuna concludes his round of seven questions to Shri Krishna in this shloka. His two questions are as follows.

Now comes the 6th question; adhiyajñaḥ kaḥ; who is adhi yajñaḥ or what is adhi yajñaḥ and how does adhiyajñaḥ reside in the body?

"Lord of sacrifice" may refer to either Indra or Vishnu. Vishnu is the chief of the primal demigods, including Brahma and Siva, and Indra is the chief of the administrative demigods. Both Indra and Vishnu are worshiped by yajna performances. But here Arjuna asks who the Lord of yajna (sacrifice), the Lord is actually and how is residing within the body of the living entity.

Second, he wants to know how can a yogi or a self-controlled person remember Ishvara at the time of departure. There must be a tremendous control over the mind to remember the Lord at the time of death; therefore, how can self- controlled people remember God at the time of death? This is the 7th question regarding anthakāla smaraṇa. Shri Krishna treats the second question as the most important question. After answering the first six questions in the next two shlokas, Shri Krishna devotes the remainder of the chapter to answering this question only.

Let us continue to develop the illustration of the animated movie so that we can use it in the next shloka when Shri Krishna starts answering Arjuna's questions. We learned about the animated character "Tom", which is just a series of images on film. The light that illuminated Tom began to think that it has an identity that is different than the rest of the film strip.

As a consequence, the light creates an identity for itself. That light becomes Tom. "He" is bound by his “body”, which is nothing but an outline on the strip of film. He also begins to think that he is the “doer” of an action and is the “enjoyer” of the result of an action. He thinks that he is walking, talking, interacting with people. He also gets happy or upset over the result of his actions.

So, in summary, we have a strip of film that contains a series of images. Each image contains several lines that make up the character Tom that has suddenly begun to think that he is alive. Let us keep this in mind as we begin to hear Shri Krishna’s answers.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन अब आगे प्रश्न करते जो उन्हें बताया भी नही गया था। वो पूछते है कि यह अधिभूत - अधिदेह क्या है अर्थात यह अधिष्ठातृ देवता विशेष या अंतर्यामी परमात्मा या कोई और? यह अधियज्ञ नामक तत्व मनुष्य आदि समस्त प्राणियों के शरीर मे किस प्रकार और कहाँ रहता है, इस को अधिदेह या अधिभूत क्यों कहते है।

अर्जुन का अगला प्रश्न था कि पुरुष अपने अंत काल मे आप को स्मरण किस प्रकार रख सकता है, युक्त चित वाले पुरुष (नित्यात्मभि) कौन होते है और वो अंत समय तक आप को कैसे याद रख सकते है।

यहां कृष्ण को मधुसूदन का सम्बोधन है, गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को और अर्जुन द्वारा कृष्ण को अनेक नामो से संबोधन है, जो प्रश्न एवम उत्तर के अनुकूल है। मधुसूदन का अर्थ मधु नामक राक्षस का वध करने वाले, मधु काम अर्थात कर्मफल से मुक्त कराने वाले है। अर्जुन का ध्यान अब युद्ध भूमि से अलग हो कर ज्ञान की ओर है, वह सम्पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है, वह यह समझ गया कि प्रथम अध्याय में जिस शास्त्र का उध्दरण दे कर बात कर रहा था, उस का अर्थ जो वह समझ रहा था, वह नही है। जीवन मे जब तक सही गुरु नही मिलता, प्रायः हम जो पढ़ते, देखते, करते और अनुभव करते है, उस से एक ज्ञान की धारणा बना लेते है और उसे ही अपने जीवन मे अपना लेते है। किंतु अध्ययन, विद्वानों से सत्संग एवम चिंतन जारी रखने से सही ज्ञान समझने और जीवन मे अपनाने से हमारा वास्तविक विकास होता है।

एक अच्छे शिष्य या श्रोता होने के नाते मन के हर विचार को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है चाहे वो बताया गया हो या मन मे उत्पन्न हुआ हो। यह दो प्रश्न सांतवे श्लोक के अंत मे नही थे किन्तु अर्जुन कोई भी शंका या संदेह नही रखना चाहता, इसलिये उस ने मन मे उठे वो भी प्रश्न पूछ लिया जो उसे पहले बताए प्रश्न के अनुसार लगे।

गीता समस्त वेदो एवम उपनिषदों का सार है अतः उपरोक्त प्रश्न उन विशिष्ट देवताओ को ध्यान में रख कर पूछे गए जिन्हें विशेष प्रयोजन से पूजा जाता है। मनुष्य की इंद्रियाओ का विवेचन तीन तरह से किया जाता है, जैसे अधिभूत, अध्यात्म और अधिदेव। इन इंद्रियाओ द्वारा जो विषय ग्रहण किये जाते है जैसे

हाथों से जो लिया जाता है, कानो से जो सुना जाता है, आखों से जो देखा जाता है और मन से जिस का चिंतन करते है वे सब अधिभूत है और हाथ- पैर आदि के सूक्ष्म स्वभाव अर्थात सूक्ष्म इंद्रियां, इन इंद्रियाओ के अध्यात्म है। परंतु इन दोनों दृष्टि को छोड़ कर अधिदेवत दृष्टि से विचार करने पर- यह मान करके कि हाथों के देवता इंद्र, पैरों के विष्णु, गुद के मित्र, उपस्थ के प्रजापति, वाणी के अग्नि, आखों के सूर्य, कानों के आकाश या दिशा, जीभ के जल, नाक के पृथ्वी, त्वचा के वायु, मन के चंद्रमा, अहंकार के बुद्धि एवम बुद्धि के देवता पुरुष सभी अधिदेवत है जो अपनी अपनी इंद्रियाओ के अनुसार व्यापार करते है। यहां तक कि उपनिषदों में मन को अध्यात्म एवम सूर्य एवम आकाश को अधिदेवत बोला गया। इसी प्रकार यज्ञ में विष्णु एवम इंद्र का आह्वान कर के यज्ञ में होम किया जाता है, जिसे अधियज्ञ कह सकते है, अतः यह सभी देवताओं में कौन श्रेष्ठ है और किस का पूजन करना चाहिए इस भेद को जो की प्राचीन काल से चले आ रहा था, मिटाने के परमब्रह्म स्वरूप परमात्मा को बृहदारण्यक उपनिषद सर्वश्रेष्ठ बताया था। उपनिषदों का यही सिंद्धान्त वेदांत सूत्र के अंतर्यामी अधिकरण में है। अतः सब के अन्तःकरण में रहने वाला यह तत्व सांख्यो की प्रकृति या जीवात्मा नही है, किन्तु परमात्मा है। गीता भी इसी भेद दृष्टि को समाप्त कर के समस्त अपरा एवम परा प्रकृति में परमात्मा को ही स्थापित करती है। जिसे हम पढ़ते भी आ रहे है और आगे भी विस्तार से पढेंगे।

पूर्व में हम ने ज्ञान - विज्ञान योग का अध्याय 7 को पढ़ा। ज्ञान उस ब्रह्म और चेतना शक्ति को स्वीकार करने और अपने स्वरूप को जानने का माध्यम है, जब की विज्ञान प्रकृति में होने वाली प्रत्येक प्रक्रिया को प्रामाणिक करने का माध्यम है। अतः जहां अन्य धर्म ज्ञान का सामंजस्य नहीं सिद्ध कर पा रहा है, वहां सनातन धर्म ने हमेशा विज्ञान को स्वीकृति देते हुए, पूर्व की मान्यताओं को बदला भी है। गीता में यज्ञ अर्थात कर्म पर अधिक वर्णन होने से अधिभूत, अधिदेवत और अध्यात्म के साथ अधियज्ञ को भी जोड़ा गया है, जिसे हम ज्ञान के साथ विज्ञान को भी समझने की चेष्टा करेंगे। ज्ञान का मार्ग श्रद्धा, विश्वास और समर्पण का है किंतु इस में संशय उत्पन्न हो जाने से अविश्वास, अश्रद्धा हो सकती है। अतः इस संशय का निवारण विज्ञान के साथ करने में पढ़ने और समझने में कुछ कठनाई आ सकती है।परमात्मा को पढ़ना, जानना, समझना, ग्रहण करना एवम आत्मसात करना जटिल है। फिर आज के युग मे संस्कृत युक्त शुद्ध हिंदी में और भी कठिन।

मनुष्य की जिंदगी रोजमर्रा की आवश्यकताओं के अतिरिक्त मन के अंतर्द्वंद में इतनी अधिक गुजरती है कि कभी कभी ऐसा लगता है कि मन मे एक व्यक्त्वि या अनेक, यही अधिदेवत, अधिभूत या अध्यात्म है जो उस की विभिन्न इंद्रियाओ से व्यापार करते है। इन सब को सिर्फ एक परमात्मा ही जोड़ सकता है। उसी को जानने के लिए अब आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।।8.02।।

।। अध्यात्म और आधुनिक विज्ञान ।। विशेष - गीता 8.2 ।।

अगर कोई धर्म- दर्शन विज्ञान की अवधारणाओं का विरोधी होगा तो युवा मानस उस पर विश्वास नहीं करेगा। विज्ञान एवं अध्यात्म के विवेच्य पृथक हैं। अध्यात्म परमार्थ ज्ञान है, आत्मा- परमात्मा सम्बन्धित ज्ञान है, इल्मे इलाही है, चिन्मय सत्ता का ज्ञान है। **विज्ञान लौकिक जगत का ज्ञान है, भौतिक सत्ता**

का ज्ञान है, पदार्थ, वस्तु, रसायन, प्रकृति का विश्लेषणात्मक- विवेचनात्मक ज्ञान है। सामान्य धारणा है कि दोनों विपरीतार्थक हैं।

चिन्तक एवं मनीषी विद्वानों को भविष्य के लिए यह सोचना है कि दोनों की मूलभूत अवधारणाओं में किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है ? इस सम्बन्ध में प्रोफेसर महावीर सरन जैन क़ा अभिमत है कि यदि दोनो अपने- अपने आग्रह छोड़ दें तो दोनों के बीच सामरस्य के सूत्र स्थापित किये जा सकते हैं।

अध्यात्म एवं विज्ञान के बीच सामरस्य का मार्ग स्थापित करने के लिए परम्परागत धर्म की इस मान्यता को छोड़ना पड़ेगा कि यह संसार ईश्वर की इच्छा की परिणति है। हमें विज्ञान की इस दृष्टि को स्वीकार करना होगा कि सृष्टि रचना के व्यापार में ईश्वर के कर्तृत्व की कोई भूमिका नहीं है। सृष्टि रचना व्यापार में प्रकृति के नियमों को स्वीकार करना होगा। डार्विन के विकासवाद के आलोक में पाश्चात्य धर्म की इस मान्यता के प्रति आज के चिंतकों का विश्वास खंडित होता जा रहा है कि " सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने सभी प्राणियों के युगल निर्मित किए थे तथा परमात्मा ने ही मनुष्य को " ईश्वरीय ज्ञान " प्रदान किया था।" जीव के विकास की प्रक्रिया के सूत्र धर्म की इस पौराणिक मान्यता में भी खोजे जा सकते हैं कि " जीव चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद मनुष्य योनि धारण करता है " तथा भगवान विष्णु के 10 अवतार लेने की पौराणिक मान्यता की इस परिप्रेक्ष्य में पुनर् मीमांसा की जा सकती है। मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, वामनावतार, नरसिंहावतार, परशुरामावतार के क्रम की मीमांसा विकासवाद के परिप्रेक्ष्य में सम्भव है।

हम भारतीय महान ऋषियों और हमारे पूर्वजों द्वारा लिखे गए पवित्र वेदों और हिंदू संस्कृति ग्रंथों के गहरे और वास्तविक अर्थ को समझने में असफल रहे हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से, अगर हम देखें, तो हमारे प्राचीन काल के किसी भी ज्ञान को कहानी के माध्यम से दिखाने के लिए विषय के आसपास कुछ व्यक्तिगत प्रासंगिकता जोड़कर आसानी से समझा जा सकता है, जिससे श्रोता के लिए इसे दिलचस्प और याद रखना आसान हो जाता है। हालाँकि, हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा दी गई इस अवधारणा को आने वाली पीढ़ियों ने ठीक से नहीं अपनाया, इसे वैज्ञानिक ढंग से समझे बिना केवल प्रतीकात्मक अर्थ ले लिया और मूल गहन ज्ञान को न समझ पाने के कारण सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक क्षेत्र पर बहुत बड़ा आघात लगा। किसी संदेश के रूप में लिखा गया प्रत्येक ज्ञान, साहित्य, अवधारणा वास्तव में एक गहरी वैज्ञानिक और तकनीकी अवधारणा है, रचना, चिकित्सा और शल्य चिकित्सा के बारे में जानकारी, शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य पर सलाह, पर्यावरण का पोषण और संतुलन, जीवन प्रबंधन और कार्य प्रबंधन, राजनीतिक और आर्थिक विचार. मुख्य उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ समाज का निर्माण करना था ताकि देश और दुनिया एक साथ "वसुधैव कुटुंबकम" थीम के साथ प्रगति कर सकें।

विज्ञान को भी अपनी भौतिकवादी सीमाओं का अतिक्रमण करना होगा। विज्ञान विशुद्ध रूप से भौतिकवादी रहा है। विज्ञान विश्व के मूल में पदार्थ एवं ऊर्जा को ही अधिष्ठित देखता आया है। विज्ञान को अपार्थिव चिन्मय सत्ता का भी संस्पर्श करना होगा। भविष्य के विज्ञान को अपना यह आग्रह भी छोड़ना होगा कि जड़ पदार्थ से चेतना का आविर्भाव होता है। डार्विन के विकासवाद के इस सिद्धान्त को तो स्वीकार करना सम्भव है कि अवनत कोटि के जीव से उन्नत कोटि के जीव का विकास हुआ है

किन्तु उनका यह सिद्धान्त तर्कसंगत नहीं है कि अजीव से जीव का विकास हुआ। मेरी इस धारणा अथवा मान्यता का तार्किक कारण है। जिस वस्तु का जैसा उपादान कारण होता है, वह उसी रूप में परिणत होता है। चेतन के उपादान अचेतन में नहीं बदल सकते। अचेतन के उपादान चेतन में नहीं बदल सकते। न कभी ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न होगा कि जीव अजीव बन जाए तथा अजीव जीव बन जाए। पदार्थ के रूपांतरण से स्मृति एवं बुद्धि के गुणों को उत्पन्न किया जा सकता है मगर चेतना उत्पन्न नहीं की जा सकती। चेतना का अध्ययन अध्यात्म का विषय है।

'जानना' चेतना का व्यवच्देदक गुण है। जीव चेतन है। अजीव अचेतन है। जीव का स्वभाव चैतन्य है। अजीव का स्वभाव जड़त्व अथवा अचैतन्य है। जो जानता है वह जीवात्मा है। जो नहीं जानता वह अनात्मा है। जीव आत्मा सहित है। अजीव में आत्मा नहीं है। जीव सुख दुख की अनुभूति करता है। अजीव को सुख दुख की अनुभूति नहीं होती। जो जानता है, वह चेतना है; जो नहीं जानता, वह अचेतना है। स्मृति एवं बुद्धि तथा मस्तिष्क के समस्त व्यापार 'चेतना' नहीं हैं। पदार्थ के रूपांतर से स्मृति एवं बुद्धि के गुणों को उत्पन्न किया जा सकता है मगर चेतना उत्पन्न नहीं की जा सकती।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति मानव सभ्यता के विकास का मुख्य कारण है। भारत प्राचीन काल से ही विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में योगदान देता रहा है। आज भी जिसे हम "पारंपरिक ज्ञान" कहते हैं वह वास्तव में वैज्ञानिक तर्क पर आधारित है।

वीर सावरकर चाहते थे, ''केवल एक जाति विशेष को ही नहीं, बल्कि सभी को वैदिक साहित्य का उपयोग करके आधुनिक तकनीक विकसित करके जीवन स्तर को ऊपर उठाना चाहिए।''

लोकमान्य तिलक ने वैदिक ज्ञान का बहुत गहन अध्ययन किया था, उनके ज्ञान पर एक ग्रंथ लिखा जा सकता है।

हिंदू पूर्वजों, ऋषि-मुनियों ने इस महान ज्ञान को न केवल कागजों पर उतारा बल्कि उस समय बड़ी कुशलता और डिजाइन के साथ कई अवधारणाओं को व्यावहारिक रूप से जमीन पर भी लागू किया गया। हम विभिन्न मंदिर, धातुकर्म, स्थापत्य सौंदर्य, गणित, शल्य चिकित्सा पद्धतियाँ देख सकते हैं...।

एक दृष्टि ने माना कि परम चैतन्य से ही जड़ जगत की सृष्टि होती है। दूसरी दृष्टि मानती है कि भौतिक द्रव्य की ही सत्ता है। भौतिक पदार्थ के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है। बुद्धि एवं मन की भाँति चेतना भी 'स्नायुजाल की बद्धता' अथवा 'विभिन्न तंत्रिकाओं का तंत्र' है जो अन्ततः अणुओं एवं आणविक क्रियाशीलता का परिणाम है। भविष्योन्मुखी दृष्टि से विचार करने पर यह स्वीकार करना होगा कि दोनों की अपनी अपनी भिन्न सत्ताएँ हैं।

अजीव अथवा जड़ पदार्थ का रूपान्तरण ऊर्जा (प्राण), स्मृति, कृत्रिम प्रज्ञा एवं बुद्धि में सम्भव है किन्तु इनमें चैतन्य नहीं होता। कम्प्यूटर चेतनायुक्त नहीं है। कम्प्यूटर को यह चेतना नहीं होती कि वह है, वह कार्य कर रहा है। कम्प्यूटर मनुष्य की चेतना से प्रेरित होकर कार्य करता है। उसे सुख दुख की अनुभूति नहीं होती। उसे स्व-संवेदन नहीं होता। 'मैं हूँ,' 'मैं सुखी हूँ', 'मैं दुखी हूँ' - शरीर को इस प्रकार के अनुभवों की प्रतीति नहीं होती। इस प्रकार के अनुभवों की जिसे प्रतीति होती है, वह शरीर से भिन्न है। जिसे प्रतीति होती है उसे भारतीय दर्शन आत्मा शब्द से अभिहित करते हैं। आत्मा में चैतन्य नामक विशेष गुण है। आत्मा में जानने की शक्ति है। आत्मा के द्वारा जीव को अपने अस्तित्व का बोध होता है।

ज्ञान का मूल स्रोत आत्मा ही है। आत्मा अमूर्त तत्व है। इन्द्रियों का वह विषय नहीं है। इन्द्रियाँ उसे जान नहीं पातीं। इससे इन्द्रियों की सीमा सिद्ध होती है। इससे आत्मा का अस्तित्व नहीं है - यह सिद्ध नहीं होता।

हिंदू पूजा स्थल मंदिर हैं जिनकी वास्तुकला एक और विज्ञान है।

आइए अब एक नजर डालते हैं कि हमें मंदिरों में क्यों जाना चाहिए...

पृथ्वी के अन्दर चुम्बकीय एवं विद्युत तरंगें निरंतर गतिमान रहती हैं; जब हम कोई मंदिर बनाते हैं तो आर्किटेक्ट और इंजीनियर जमीन का एक टुकड़ा चुनते हैं जहां ये लहरें प्रचुर मात्रा में हों। मुख्य मूर्ति मंदिर के मध्य में स्थित है; इस स्थान को गर्भगृह के नाम से भी जाना जाता है। मंदिर का निर्माण किया जाता है और फिर एक मूर्ति स्थापित की जाती है, जिसकी पूजा को आमतौर पर प्राणप्रतिष्ठा के रूप में जाना जाता है। मूर्ति वहां रखी गई है जहां चुंबकीय तरंगें अत्यधिक सक्रिय हैं। मूर्ति की स्थापना के समय वे मूर्ति के नीचे कुछ तांबे की प्लेटें गाड़ देते हैं; प्लेटों पर वैदिक लिपि उत्कीर्ण है; ये तांबे की प्लेटें पृथ्वी से चुंबकीय तरंगों को अवशोषित करती हैं और आसपास के क्षेत्र में विकिरण करती हैं। इसलिए, यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से मंदिर जाता है और मूर्ति के चारों ओर दक्षिणावर्त घूमता है, तो उसका शरीर इन चुंबकीय तरंगों को अवशोषित करता है और स्वस्थ जीवन जीने के लिए सकारात्मक ऊर्जा बढ़ाता है।

जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर अपने स्मारकीय कार्य, "द वर्ल्ड ऐज़ विल एंड रिप्रजेंटेशन" में लिखते हैं - "पूरे विश्व में उपनिषदों के समान लाभकारी और इतना उन्नत कोई अध्ययन नहीं है। यह मेरे जीवन की सांत्वना है; यह मेरी मृत्यु की सांत्वना होगी।"

हमारे मनीषियों ने अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों की विवेचना की है। सम्प्रति इसकी विवेचना का अवकाश नहीं है। हमारा मंतव्य यह प्रतिपादित करना है कि धर्म-दर्शन एवं विज्ञान के सम्बन्ध की चर्चा के समय मनोमय कोश की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। हम केवल यह कहना चाहते हैं कि विज्ञान एवं अध्यात्म के बीच सामरस्य का मार्ग स्थापित करने में मनोविज्ञान का अध्ययन भी सहायक हो सकता है।

आपका प्रसन्नता सूचकांक कैसे बढ़ता है? चार हार्मोन हैं जो हमारी खुशी निर्धारित करते हैं -

एंडोर्फिन

डोपामाइन

सेरोटोनिन

ऑक्सीटोसिन

प्राणायाम, योग और ध्यान की तकनीकें न केवल शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहने में मदद करती हैं बल्कि इन हार्मोनों की आवश्यक मात्रा को प्रेरित करके बेहतर जीवन और खुशहाल जीवन भी बनाती हैं।

एक संस्कृति बीज बोती है और दूसरी संस्कृति लाभ पहुंचाती है, विश्व की सभी संस्कृतियों को इस महान भारतीय संस्कृति का उपहास न करके इस महान संस्कृति का सम्मान करना सीखना चाहिए।

मनोविज्ञान में 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' पर कार्य हो रहा है। पहले मनोविज्ञान उत्तेजन- प्रतिक्रिया व्यवहार के आधार पर ही मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता था। आज का मनोविज्ञान उद्दीपनों और प्रतिक्रियाओं के आधार पर मानवीय व्यवहार का अध्ययन करने तक सीमित नहीं है। अब मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार को समझने के लिए प्रत्यक्षण, स्मृति, कल्पना, तर्क, निर्णय, अनुभव बोध आदि का भी उपयोग कर रहा है।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के अध्ययन का आधार संज्ञान है। संवेदन एवं संज्ञान में अन्तर है। संवेदन के द्वारा प्राणी को उत्तेजना का आभास होता है। संज्ञान शक्ति के द्वारा मनुष्य संवेदनों को नाम, रूप, गुण आदि भेदों से संगठित कर, ज्ञान प्राप्त करता है। योग साधना परम्परा में ध्यान, धारणा तथा समाधि का विशद् वर्णन एवं विवेचन सुलभ है। मनोविज्ञान को गहन समाधि एवं स्वभावोन्मुख गहन ध्यान में लीन साधक की शान्त, निर्विकल्प, विचार शून्य एवं क्रियाहीन स्थिति के अन्तर्निरीक्षण की विधि एवं पद्धति का संधान करना चाहिए। इस प्रकार का गहन अध्ययन अध्यात्म एवं विज्ञान के मध्य सेतु का काम कर सकता है।

विज्ञान को इस अवधारणा का अतिक्रमण करना होगा कि भौतिक विज्ञान के नियमों से सम्पूर्ण वास्तविकता की व्याख्या सम्भव है। इस दिशा में सन् 1936 में गोदेल द्वारा प्रतिपादित प्रमेय का महत्व है। उन्होंने सिद्ध किया कि गणित की बहुत सी वास्तविकताओं को सिद्ध नहीं किया जा सकता। गणित की यह अपूर्णता अज्ञान के कारण नहीं है। इसका कारण गणित की आधारभूत संरचना है। [राजा रमन्ना : फिजिकल स्पेस इन द कान्टेक्स्ट ऑफ ऑल नालिज - इंडियन हॉराइजन्स, खण्ड 1.2, पृ० 1.6, भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्, नई दिल्ली, 1987]

पहले भौतिक-विज्ञानी मानते थे कि भौतिकी व्याख्या में तरंग एवं सूक्ष्म अंश परस्पर विपरीत छोर हैं। परमाणु के आविष्कार के बाद भौतिक- विज्ञान का उक्त सिद्धान्त अमान्य हो गया है। अब सर्वमान्य है कि परमाणु क्रिया की व्याख्या के लिए दोनों की साथ- साथ व्याख्या करना आवश्यक है। परमाणु के सम्बन्ध में यह भी ध्यान देने योग्य है कि परमाणु के अंशों को गणित की दृष्टि से विश्लेषित किया जा सकता है। परमाणु के अंशों की किसी भी विधि से झलक पाना सम्भव नहीं है। ऊर्जाणु का सूक्ष्म-अंश युगपत एकाधिक स्थानों पर हो सकता है अथवा एकाधिक मार्गों पर गमन कर सकता है। जब भौतिक जगत के ऊर्जाणु के स्वरूप की आधारभूत यथार्थता का प्रत्यक्षण इतना दुष्कर एवं जटिल है तब समस्त आभासों का अतिक्रमण करने वाले आत्म तत्व का किसी यंत्र से प्रत्यक्षण किस प्रकार सम्भव है। जिससे सबको जाना जाता है उसको बाह्य- विधि से कैसे जाना जा सकता है। विज्ञान में ऊर्जाणु भौतिकी के क्षेत्र में नए अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। इनसे भविष्य में आत्मा अथवा चेतना के स्वतंत्र अस्तित्व का प्रमाण सिद्ध होना सम्भव है। प्रोफेसर महावीर सरन जैन क़ा अभिमत है क़ि विज्ञान में ऊर्जा भौतिकी आदि क्षेत्रों में जो नव्यतम अनुसंधान हुए हैं, उनके आलोक में विज्ञान इस सिद्धान्त की पुष्टि की ओर कदम बढ़ा रहा है कि प्रत्येक प्राणी की चेतना को प्रकट करने के लिए जैविक चेतना संहिति तो केवल भौतिक ढाँचा जुटाता है।

न्यूटन से बहुत पहले भारतीय वैज्ञानिकों को गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान था। आर्यभट्ट ब्रहमगुप्त, भास्कर आदि वैज्ञानिकों की कृतियों में इसका उल्लेख है।

हजारों वर्ष पहले हो गया था। उन्होंने परमाणु का आकार निश्चित कर दिया था। कणाद मुनि के वैशेषिक दर्शन में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है। जैन शास्त्रों में भी अणु के सूक्ष्म भाग परमाणु की जानकारी दी गई है।

यहां ध्यान देने की बात यही है कि विज्ञान में परमाणिकता को खोजते खोजते वैज्ञानिक उस स्थान पर पहुंच जाता है, जहां उस के द्वारा प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना संभव नही होता। अतः वैज्ञानिक वास्तव में मनीषी और ज्ञानी होता है जो ज्ञान की तलाश विज्ञान से शुरू करता है और उस सार्भौमिक सत्ता को स्वीकार करता है। कोई वैज्ञानिक नास्तिक विचारो का नही होता। किंतु धर्म के मार्ग पर चलने वाला पुरुष मात्र श्रद्धा, विश्वास और समर्पण से कार्य इस विश्वास के साथ करता है कि उस ज्ञान का दायित्व परमात्मा का है। किंतु यह अंधविश्वास ही होगा क्योंकि वेदों के अनुसार अनेक ऋषि मुनियों में परमात्मा को कोरे श्रद्धा, विश्वास और समर्पण से नही पूजा, उन्होंने अनेक अनुसंधान, खोज कर के वेदों के ज्ञान में संगीत, प्रार्थना, यज्ञ, आर्युवेद, आयुध और संचार के माध्यम और रसायन, सर्जरी आदि को जोड़ा। इसलिए आज भी हमारे वेद, विश्व के उच्च स्तर के अनुसंधान केंद्रों के अध्ययन का माध्यम है। बिग बैंग या GOD Partical हो या परमाणु कार्यक्रम, वेदों के बिना अधूरा है। किंतु हम उनसे कितना सीखते है, पता नहीं।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 8.2 ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.3॥

श्रीभगवानुवाच
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥

"śrī-bhagavān uvāca,
akṣaraḿ brahma paramaḿ,
svabhāvo 'dhyātmam ucyate..।
bhūta-bhāvodbhava-karo,
visargaḥ karma- saḿjñitaḥ"..।।

भावार्थ:

श्री भगवान ने कहा - जो अविनाशी है वही "ब्रह्म" (आत्मा) दिव्य है और आत्मा में स्थिर भाव ही "अध्यात्म" कहलाता है तथा जीवों के वह भाव जो कि अच्छे या बुरे संकल्प उत्पन्न करते है उन भावों का मिट जाना ही "कर्म" कहलाता है। (३)

Meaning:

Shree Bhagavan said:

Brahman is the imperishable supreme. Adhyaatma is individual nature. Karma is defined as the force that produces the existence of beings.

Explanation:

In this shloka, three questions are answered out of seven questions asked by Arjuna. Shri Krishna says that brahman is the imperishable, supreme eternal essence that we encountered in the second chapter. Therefore, what is Brahman, the eternal consciousness is Brahman, and the very word Brahma means brihat tamatva Brahma. It is derived from the root brih, to mean big and Brahma means that which is superlatively big. That which is superlatively limitless entity; anantha tatvam is called Brahman. The Vedas address God by several names; Brahman is one of them. In this verse, Shree Krishna says to Arjun that the Supreme Entity is called the Brahman. Time, space, the chain of cause and effect, etc., are all characteristics of the material realm. However, the Brahman is beyond these, as He is transcendental to the material plane. He is described as aksharam or indestructible because He is unaffected by the changes in the universe.

The Brihadaranyak Upanishad 3.8.8 states, "Learned people speak of Brahman as akshar (indestructible). It is also designated as Param (Supreme) because It possesses qualities beyond those possessed by maya and the souls."

"What is adhyaatma" is answered next. The very all-pervading consciousness must be existing within the individual body also. If the consciousness is all-pervading, it must be within the body also. And when the consciousness is seen within the body, that is called adhi ātmam, or adyātmam. The word atma here means śarīram; adhi ātmam means obtaining within the body. So thus, consciousness looked from the angle of samaṣti or total; it is called Brahma. When the very same consciousness is looked from the standpoint of the individual body, it is called adhyātmam. So the word, svabhāvaḥ means the inner essence, the consciousness within. Brahman is paramātma; adhyātmam is jīvatma; Brahman is the consciousness from macro angle; adhyātmam is the consciousness from the micro angle; consciousness is the same; two different words are used; because of two different terms of reference.

Shri Krishna says that it is svabhaava, or the set of qualities of an individual. Each person in this world has a unique combination of attributes, a unique

permutation of sattva, rajas and tamas that is their own. When the universal eternal essence is conditioned or covered by an individual's attributes, it is known as adhyaatma or aatma.

Thus, consciousness is called paramātma, consciousness is called jīvatma; depending. upon macro and micro point of reference. So, with this second question is answered.

The word adhyatma has two meanings in Sanskrit. One is the science of the soul, and the second is the path to spirituality. However, here Shree Krishna has used it for one's own self that includes the body, mind, and intellect.

Lastly, Shri Krishna answers the question "What is karma".

All the deliberate activities of human beings which are responsible for the future creation is called karma, because according to our scriptures, creation is not an accident; creation is a clean incident caused by previous factors or action. For if I am born here with a physical body, it is not an accident, it is a result of what? my own past karma. Similarly, you are born because of your karma; the individual birth is because of individual karma; the birth of humanity is because of the karma of the humanity. He says that it is the force that brings about the creation of every entity in this universe.

Karmas are fruitive activities performed by a person. It is these karmas that forge every individual's distinct condition of existence in various lifetimes. They keep the soul circling in samsara or the cycle of material existence.

when you take the creation as a whole; we say the present creation is the result of the past creation. And the past creation is the result of its past creation; and the future creation will be result of the present creation.

That is what we are seeing in Brahma sūtra now. Bhagavān is not responsible for the creation. The type of creation and the necessity of creation is because I have asked for it, by my good/bad/mixed action.

Thus, everything is karma ordered and therefore karma is defined as sriṣṭi kāraṇam. That is here presented as bhūta bhāva udbhavakaraḥ and visargaḥ means action.

At one level, it is the mechanism in the projector that brings to life the story that lies hidden in the film strip. At another level, it is the animator's act of drawing the characters in the movie. Essentially, it is the force that converts an unmanifested object into a manifested object.

Similarly, we can say that Ishvara set into motion this entire universe with the one original action that has resulted into the millions and millions of actions that occur in the universe every second. It was the seed of all future actions in the universe. But our ego, our false sense of individuality, comes under the delusion that it is the doer of all actions. Each such individualistic action causes us to further identify with our body and go further from liberation. Ultimately, like the movie that eventually ends in two hours, everything that is unmanifested will be manifested and will be dissolved, only to start all over again.

Shri Krishna continues with his explanations in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन द्वारा सात प्रश्न का उत्तर मात्र दो श्लोक में दिया गया है। अर्जुन ने पूछा था कि **ब्रह्म, कर्म, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञ एवम अंत समय में समहित चित्तवाले पुरुष आप को किस प्रकार स्मरण कर सकते है।**

पूर्व अध्याय में परब्रह्म के दो भाग परा और अपरा प्रकृति के पढ़े। इन दो भागों के उपरोक्त 7 स्वरूप के साथ अध्याय समाप्त हुआ । यहां भगवान श्री कृष्ण कहते कि इस समस्त ब्रह्मांड में दो ही प्रकार की प्रकृति है। जिसे हम क्षर अर्थात जो अनित्य, नाशवान एवम सतत परिवर्तित रूप से जानते है एवम जो अव्यक्त प्रकृति है जिस का क्षय नही होता उसे हम अक्षर प्रकृति कह सकते है। इस अक्षर प्रकृति से आगे परम शब्द का प्रयोग करके है उसे ब्रह्म बताया गया है। अर्थात अक्षर (नित्य-अविनाशी) तो न्यायमत में आकाश कालादि को भी नित्य मान कर कथन किया गया है। सांख्य मत में प्रकृति को विभु मान कर अक्षर रूप से कथन किया है। परंतु जिस में आकाश आदि द्रव्य तथा विभूरूप प्रकृति अत्यंत शून्य हो जाते है, ऐसा अक्षरो का अक्षर परम अक्षर जो है वो ही ब्रह्म है। **ब्रह्म** शब्द निर्गुण, निराकार, सच्चिदानंदघन, अनादि, नित्य, अनन्त परमात्मा का वाचक है। अक्षर में और भी नाम हो सकते है, जैसे कोई आकाश ही ले ले। इसलिये इस को परम अक्षर कहा गया अर्थात जो अक्षर में भी परम है।

शंकराचार्य जी ने ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है।

"मैं शुद्ध, मैं बुद्ध अर्थात बोधस्वरूप, मैं व्यापक आत्मस्वरूप से नित्यसिद्ध, मैं शान्त, मैं निरन्तर परमानन्द का सागर ही हूँ ।।"

"मैं स्वयं अनादि हूँ , इसलिए सबका आदि हूँ; मैं वाणी और मन के द्वारा साध्यवस्तु मात्र हूँ और मैं वेदवाणी से जानने योग्य प्रशंसनीय अखण्ड बोधरूप हूँ ।।"

"मैं पर और अपर दोनों हूँ; मैं बाहर और भीतर पूर्णरूपेण विराजमान हूँ; मैं क्षयरहित , अजर , अमर , नित्यानंद स्वरूप और अद्वितीय हूँ।।"

"मैं विहित और आविदित वस्तुओं से भिन्न हूँ, मैं माया और उसके कर्म से शून्य हूँ, मैं केवल द्रष्टारूप हूँ और मैं ज्ञानमात्र एकरूप से भासनेवाला हूँ।।"

"मैं व्यापक आत्मा से अभिन्न हूँ, अखण्ड हूँ, सत्य- ज्ञान- आनन्दरूप हूँ, शुद्ध हूँ, उपनिषद के द्वारा जानने योग्य हूँ, मैं परमसत्य हूँ, मैं परमप्रकाश ब्रह्म ही हूँ ।।"

"यह दीखनेवाली पृथ्वी ब्रह्म नहीं है; जल, तेज, वायु, आकाश और पृथ्वी - इन पंचभूतों के सकल कार्य भी ब्रह्म नहीं हैं। इन सबका आधारभूत विशुद्ध, निर्मल, अद्वितीय जो ब्रह्म है; वही मैं हूँ ।।"

"शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध अथवा अन्य कोई द्रव्य भी ब्रह्म नहीं है; किन्तु इन सबका आधारभूत जो विशुद्ध, नित्य, अद्वितीय ब्रह्म है; मैं वही हूँ।।"

"द्रव्यों का समूह, गुण, क्रिया, जाति, विशेष या और कोई पदार्थ कभी भी ब्रह्म नहीं हो सकता; जो इनका आधारभूत केवल, नित्य, अद्वितीय, सत् ब्रह्म है; वही मैं हूँ ।।"

अतः ब्रह्म शब्द निर्गुण, निराकार, सच्चिदानंदघन, अनादि, नित्य, अनन्त परमात्मा का वाचक परम से जोड़ कर बताया गया है क्योंकि कोई न कोई गुण उपरोक्त में मिल भी जाए किंतु जो सभी से ऊपर निर्गुण है, वही ब्रह्म है।

आत्मा यानी शरीर को आश्रय बनाकर जो अन्तरात्म भाव से उस में रहनेवाला है और परिणाम में जो परमार्थ ब्रह्म ही है वही तत्त्व स्वभाव है उसे ही अध्यात्म कहते हैं अर्थात् वही अध्यात्म नाम से कहा जाता है। प्रकृति के चेतन अर्थात परा प्रकृति रूप जब अपरा प्रकृति से मिलती है जो शरीर, इंद्रियाओ, मन, बुद्धि एवम अहम आदि से उस मे एक विशिष्ट प्रकार के गुण या भाव उत्पन्न हो जाते है। यह उस का निजी स्वभाव होता है। स्वयम में स्थिर भाव ही अध्यात्म अर्थात आत्मा का अधिपत्य है। इस से पहले माया के आधिपत्य में में रहते है, किन्तु जब स्व भाव अर्थात स्वयम में स्थिर भाव मिल जाता है तो आत्मा का अधिपत्य उस मे प्रवाहित हो जाता है। **आत्मा के आधिपत्य से जीव का परमात्मा से अलग भाव तैयार होता है, जीव का यह स्वभाव ही अध्यात्म है।** भगवान की अंश रूपा चेतन परा प्रकृति वस्तुतः भगवान से अभिन्न होने के कारण वह अध्यात्म नामक सम्पूर्ण जीव समुदाय भी यथार्थ में भगवान से अभिन्न और उन का स्वरूप ही है। इस आत्मा की जो विद्या है उसका नाम भी अध्यात्म है। परन्तु यहाँ स्वभाव विशेषण के साथ अध्यात्म शब्द आत्मा का अर्थात् जीव के होनेपन का (स्वरूपका) वाचक है। जब ब्रह्म अंश स्वरूप में अपराप्रकृति से मिल कर किसी स्वरूप को धारण करता है जो प्रकृति के सत्व, रज और तम गुण का permutation या combination हो तो वह ही अध्यात्म है। अध्यात्म को हम समस्त भूतों में जो निवास करता है और प्रकृति के सत, रज और तम गुणों में व्यवहार करता है, उस जीवात्मा को अध्यात्म कह सकते है।

अतः हम कह सकते है ब्रह्म और अध्यात्म दोनो ही अक्षर है, ब्रह्म संपूर्णता का परम अक्षर है, जबकि अध्यात्म जीव के चेतन, मन, बुद्धि एवम इन्द्रियों के जनित स्वभाव का नाम है। जीव का चेतन ही ब्रह्म का अंश है। किन्तु अध्यात्म में यह चेतन तत्व इन्द्रिय, मन और बुद्धि से प्रकृति से जुड़ा रहता है।

अधिभूत शब्द की व्याख्या अगले श्लोक में की गयी किन्तु अधिभूत प्रकृति के समस्त क्षर पदार्थ ही है। इसे हम समस्त प्रकार के जड़ पदार्थ भी कह सकते है। इस जड़ पदार्थो में जो भी परिवर्तन या क्रियाएं होती रहती है उसे हम **कर्म** कहते है। अर्थात भूत पदार्थो के भाव का उद्भव और अभ्युदय जिस त्याग से होता है जो सृष्टि स्थिति का आधार है उस त्याग का नाम ही कर्म है। प्राणियों के वे संकल्प जो भले अथवा बुरे संस्कारो की संरचना करते है उन का विसर्ग अर्थात विसर्जन उन का मिट जाना ही कर्म की पराकाष्ठा है। यही सम्पूर्ण कर्म है जिस के लिए योगेश्ववर कृष्ण ने कहा कि वह ही सम्पूर्ण कर्म को जानता है। इस अवस्था मे जबकि भूतों के भाव जो कुछ न कुछ रचते रहते है, भले अथवा बुरे संस्कार संग्रह करते है, बनाते है वे सर्वथा शान्त हो जाये यही कर्म की संपूर्णता है। फिर इस के आगे कर्म करने की आवश्यकता नही रह जाती। कर्म का अर्थ है चिंतन जो यज्ञ में है। इसलिये **मन-बुद्धि में स्फुरण रूप तरंग का नाम भाव है। इसलिये मन बुद्धि का साक्षात परिणाम अथवा मन- बुद्धि की जानकारी में जो व्यापार देहेन्द्रियों द्वारा हो रहा है वह सब भाव उत्पादक होने से कर्म है।** अर्थात जिस चेष्टाद्वारा भोग अथवा संस्कार की उत्पत्ति हो उसी का नाम कर्म है।

सृष्टि के संचालन का कारक कर्म ही है। प्रत्येक जीव अपने अपने कर्म के फल के अनुसार जन्म-मरण के चक्र को भोगता है। यदि कर्म का फल न रहे तो उस के उपभोग का भी प्रश्न नही होगा और जीव मुक्ति की ओर अग्रसर होगा। परमात्मा सृष्टि का संचालन नही करता है, यह सृष्टि परमात्मा की योगमाया के निश्चित कर्म के फल के अनुसार चलती रहती है। प्रत्येक जीव अपने अपने कर्मो के फल से बंधा है। **इस का लेखन स्वतः ही जीव की कर्मफल की डायरी में कर्म के साथ ही लिख जाता है। मनुष्य चाहे कितना भी छुपा कर, छल कपट कर के कर्म करे, किन्तु उस का फल के लेखन में कोई गलती या छूटने की संभावना ही नही है। इसलिये कर्म को ही सृष्टि कारण कहा गया है।**

कर्म मन एवम बुद्धि की तरंग से की गई चेष्टा है, अतः जो क्रियाए मन एवम बुद्धि की तरंग के बिना चेष्टा के होते है, वे कर्म नही कहलाते। कर्म से फल अर्थात कारण जनित होगा। भोजन करने का प्रयास, कमाने, पकाने और खाने का कार्य कर्म है किंतु खाना खाने की बाद कि पाचन क्रिया स्वतः होती है, इसलिये कर्म नही कहलाती।

स्थावरजङ्गम जितने भी प्राणी देखने में आते हैं उन का जो भाव अर्थात् होनापन है उस होनेपन को प्रकट करने के लिये जो विसर्ग अर्थात् त्याग है उस को कर्म कहते हैं। ऐसा कहा गया है, प्रणय काल के पुरुष द्वारा सन्तानोत्पति की क्रिया कर्म है, जो सृष्टि की रचना को आगे बढ़ाता है।

महाप्रलय के समय प्रकृति की अक्रिय अवस्था मानी जाती है तथा महासर्ग के समय प्रकृति की सक्रिय अवस्था मानी जाती है। इस सक्रिय अवस्था का कारण भगवान् का संकल्प है कि मैं एक ही बहुत रूपों से हो जाऊँ। इसी संकल्प से सृष्टि की रचना होती है। इसलिये इसे कर्म कहा गया। तात्पर्य है कि महाप्रलय के समय अहंकार और सञ्चित कर्मों के सहित प्राणी प्रकृति में लीन हो जाते हैं और उन

प्राणियों के सहित प्रकृति एक तरह से परमात्मा में लीन हो जाती है। उस लीन हुई प्रकृति को विशेष क्रियाशील करने के लिये भगवान् का पूर्वोक्त संकल्प ही विसर्ग अर्थात्,त्याग है। भगवान् का यह संकल्प ही कर्मों का आरम्भ है जिस से प्राणियों की कर्म परम्परा चल पड़ती है। कारण कि महाप्रलय में प्राणियों के कर्म नहीं बनते प्रत्युत उस में प्राणियों की सुषुप्त अवस्था रहती है। महासर्ग के आदि से कर्म शुरू हो जाते हैं।

अर्जुन के सात प्रश्न में ब्रह्म, कर्म, अध्यात्म के साथ हम ने महासर्ग - विसर्ग और महाप्रलय - विसर्जन को पढ़ा। अब आगे अर्जुन के अन्य प्रश्नों का उत्तर अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.03।।

।। अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ / गीताधर्म और मार्क्सीवाद / सहजानन्द सरस्वती » गीताधर्म और मार्क्सीवाद »।। गीता -विशेष 8.03 ।।

अब हमें जरा सातवें अध्याय के अंत और आठवें के शुरू में कहे गए गीता के **अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ** का भी विचार कर लेना चाहिए। गीता में ये बातें पढ़ के सर्वसाधारण की मनोवृत्ति कुछ अजीब हो जाती है। ये शब्द कुछ ऐसे नए और निराले मालूम पड़ते हैं जैसे विदेशी हों। असल में यज्ञ, भूत, दैव, आत्मा शब्द या इनके अर्थ तो समझ में आते हैं। इसीलिए इनके संबंध में किसी को कभी गड़बड़ी मालूम नहीं होती। मगर अध्यात्म आदि शब्द एकदम नए मालूम पड़ते हैं। इसीलिए कुछ ठीक जँचते नहीं। यही कारण है कि ये बातें पहेली जैसी मालूम पड़ती हैं। ऐसा लगता है कि ये किसी और ही दुनिया की चीजें हैं।

एक बात और भी है। छांदोग्य आदि उपनिषदों में अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव या आधिदैवत शब्द तो पाए जाते हैं। इसलिए जो उपनिषदों का मंथन करते और उनका अर्थ समझते हैं वह इन शब्दों के अर्थ गीता में भी समझने की कोशिश कर सकते हैं, करते हैं। इनके अर्थ भी वे लोग जैसे-तैसे समझ पाते हैं। मगर अधियज्ञ बिलकुल ही नया है। यह तो उपनिषदों में भी पाया जाता है नहीं। इसलिए न सिर्फ यह अकेला एक पहेली बन जाता है, बल्कि अपने साथ अध्यात्म आदि को भी वैसी ही चीज बना डालता है। जब हम अधियज्ञ का ठीक-ठीक आशय समझ नहीं पाते तो खयाल होता है कि हो न हो, अध्यात्म आदि भी कुछ इसी तरह की अलौकिक चीजें हैं।

अधियज्ञ का तात्पर्य "निवासी परमात्मा से है, जो जीवों को यज्ञ करने के लिए प्रेरित करता है और उनके निर्धारित कर्तव्य का फल प्रदान करता है"।

भगवद्गीता के अनुसार यज्ञ' भगवद्गीता के अनुसार परमात्मा के निमित्त किया कोई भी कार्य यज्ञ कहा जाता है। परमात्मा के निमित्त किये कार्य से संस्कार पैदा नहीं होते न कर्म बंधन होता है। भगवदगीता के चौथे अध्याय में भगवान श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदेश देते हुए विस्तार पूर्वक विभिन्न प्रकार के यज्ञों को बताया गया है।

आठवें अध्याय के 3-4 श्लोकों में जो इनके अर्थ बताए गए हैं उनसे तो यह उलझन सुलझने के बजाए और भी बढ़ जाती है। जिस प्रकार कहते हैं कि 'मघवा मूल और विडौजा टीका'। यानी मघवा शब्द का अर्थ किसी ने विडौजा किया सही। मगर उससे सुननेवालों को कुछ पता ही न लगा। वे तो और भी परेशानी में पड़ गए कि यह विडौजा कौन-सी बला है। मघवा में तो मघ शब्द था जो माघ जैसा लगता था। मगर विडौजा तो एकदम अनजान ही है। ठीक यही बात यहाँ हो जाती है। ये शब्द तो कुछ समझ में आते भी हैं, कुछ परिचित जैसे लगते हैं। मगर इनके जो अर्थ बताए गए हैं वे? वे तो ठीक विडौजा जैसे हैं और समझ में आते ही नहीं।

बेशक यह दिक्कत है। इसलिए भीतर से पता लगाना होगा कि बात क्या है। एतदर्थ हमें उपनिषदों से ही कुंजी मिलेगी। मगर वह कुंजी क्या है यह जानने के पहले यह तो जान लेना ही होगा कि अधियज्ञ गीता की अपनी चीज है। गीता में नवीनता तो हुई। फिर यहाँ भी क्यों न हो ? गीता ने यज्ञ को जो महत्त्व दिया है और उसके नए रूप के साथ जो इसकी नई उपयोगिता उसने सुझाई है उसी के चलते अध्यात्म आदि तीन के साथ यहाँ अधियज्ञ का आ जाना जरूरी था। एक बात यह भी है कि यज्ञ तो भगवत्पूजा की ही बात है। गीता की नजरों में यज्ञ का प्रधान प्रयोजन है समाज कल्याण के द्वारा आत्मकल्याण और आत्मज्ञान। गीता का यज्ञ चौबीस घंटा चलता रहता है यह भी कह चुके हैं। इसलिए गीता ने आत्मज्ञान के ही सिलसिले में यहाँ अधियज्ञ शब्द को लिख के शरीर के भीतर ही यह जानना-जांचना चाहा है कि इस शरीर में अधियज्ञ कौन है? बाहर देवताओं को या तीर्थ और मंदिर में भगवान को ढूँढ़ने के बजाए शरीर के भीतर ही यज्ञ-पूजा मान के गीता ने उसी को तीर्थ तथा मंदिर करार दे दिया है और कह दिया है कि वहीं आत्मा-परमात्मा की ढूँढ़ो। बाहर भटकना बेकार है। प्रश्न और उत्तर दोनों में ही जो 'इस शरीर में' - 'अत्र देहेऽस्मिन्' कहा गया है उसका यही रहस्य है।

इस संबंध में एक बात और भी जान लेना चाहिए। अगस्त कोन्त (Auguste Comte) नामक फ्रांसीसी दार्शनिक ने तथा और भी पश्चिमी दार्शनिकों ने किसी चीज के और खासकर समाज और सृष्टि के विवेचन के तीन तरीके माने हैं, जिन्हें पॉजिटिव (Positive) थियोलौजिकल (Theological) और मेटाफिजिकल (Metaphysical) नाम दिया गया है। मेटाफिजिक्स अध्यात्मशास्त्र को कहते हैं, जिसमें आत्मा-परमात्मा का विवेचन होता है और थियोलौजी कहते हैं, धर्मशास्त्र को, जिसमें स्वर्ग, नरक तथा दिव्यशक्ति -संपन्न लोगों का, जिन्हें देवता कहते हैं, वर्णन और महत्त्व पाया जाता है। पॉजिटिव का अर्थ है निश्चित रूप से प्रतिपादित या सिद्ध किया हुआ, बताया हुआ। कोन्त के मत से किसी पदार्थ को दैवी या आध्यात्मिक कहना ठीक नहीं है। वह इन बातों को बेवकूफी समझता है। उसके मत से कोई चीज स्वाभाविक (Natural) भी नहीं कहा जा सकती। ऐसा कहना अपने आपके अज्ञान का सबूत देना है। किंतु हरेक दृश्य पदार्थों का जो कुछ ज्ञान होता है वही हमें पदार्थों के स्वरूपों को बता सकता है और उसी के जरिए हम किसी वस्तु के बारे में निर्णय करते हैं कि कैसी है, क्या है आदि। बेशक, यह ज्ञान आपेक्षिक होता है - देश, काल, परिस्थिति और पूर्व जानकारी की अपेक्षा करके ही यह ज्ञान होता है, न कि सर्वथा स्वतंत्र। इसी ज्ञान के द्वारा उसके पदार्थों का विश्लेषण करके जो कुछ स्थिर किया जाता है वही पॉजिटिव है, असल है, वस्तुतत्व है। इसी प्रणाली को लोगों ने आधिभौतिक विवेचन की प्रणाली कहा है। इसे ही मैटिरियलिस्टिक मेथड (Materialistic method) भी कहते हैं। शेष दो को क्रमशः आधिदैवत एवं आध्यात्मिक विवेचन प्रणाली कहते हैं।

अधिदैव (अधिदैव)।—तीन पद, अर्थात्। अधिभूत , अधिदैव और अध्यात्म - आज एक त्रय के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन इनका उपयोग अकेले या जोड़े में भी किया जाता है। अधिभूत-अध्यात्म , अधिभूत-अधिदैव , अधिदैव-अध्यात्म , उनका क्रम महत्वहीन है। मूल रूप से, ये तीनों बाहरी या मूर्त (अधिभूत) के लिए खड़े हैं, अमूर्त को दिव्य (अधिदैव) के रूप में वर्णित किया गया है और जो शरीर, मन, आत्मा, आदि (अध्यात्म) के साथ पहचाने जाने वाले 'स्वयं' से संबंधित है। इस त्रय की जड़ें भारतीय में बहुत गहरी हैं, हालाँकि यह वैदिक और बाद के साहित्य में परिलक्षित होती है।

अधिदैवत की पहचान पुरुष या आत्मा से की गई है क्योंकि सभी देवता इसमें निवास करते हैं। अधिदैव (या अधिदेवता या अधिदैवता) का अर्थ है वह सब जो देवताओं का है। इसका अर्थ ईश्वरीय रचना भी है। अंत में, अधिदैव शब्द सर्वोच्च देवता, आदिम मनुष्य, भौतिक सृष्टि के कारण (पुरुषश्चधिदैवतम्) को संदर्भित करता है। देव शब्द की उत्पत्ति div धातु से हुई है - 'चमकना, उज्ज्वल होना' जिसमें ac प्रत्यय लगा है ; जब देव में अधि उपसर्ग के साथ अन् प्रत्यय जोड़ा जाता है तो देव दैव बन जाता है, दैव शब्द अधिदैवम् बन जाता है , जो एक नपुंसक अव्यय यौगिक है।

आधिदैवत प्रणाली में दिव्य शक्तियों की सत्ता स्वीकार करके ही आगे बढ़ते हैं। उसमें मानते हैं कि ऐसी अलौकिक ताकतें हैं जो संसार के बहुत से कामों को चलाती हैं। बिजली का गिरना, चंद्र-सूर्य आदि का भ्रमण तथा निश्चित समय पर अपने स्थान पर पहुँच जाना, जिससे ऋतुओं का परिवर्तन होता है, आदि बातें ऐसे लोग उस दैवी-शक्ति के ही प्रभाव से मानते हैं। ये बातें मानवीय शक्ति के बाहर की हैं। हमारी तो वहाँ पहुँच हई नहीं। सूर्य से निरंतर ताप निकल रहा है। फिर भी वह ठंडा नहीं होता! ऐसा करने वाली कोई दिव्य-शक्ति ही मानी जाती है। हम किसी चीज को कितना भी गर्म करें। फिर भी खुद बात की बात में वह ठंडी हो जाती है। मगर सूर्य क्यों ठंडा नहीं होता? उसमें ताप कहाँ से आया और बराबर आता ही क्यों कहाँ से रहता है? ऐसे प्रश्नों का उत्तर वे लोग यही देते हैं संसार का काम चलाने के लिए वह ताप और प्रकाश अनिवार्य होने के कारण संसार का निर्माण करने वाली वह दैवी-शक्ति ही यह सारी व्यवस्था कर रही है। इसी प्रकार प्राणियों के शरीरों की रचना वगैरह को भी ले सकते हैं। जाने कितनी बूँदें वीर्य की यों ही गिर जाती हैं और पता नहीं चलता कि क्या हुईं । मगर देखिए उसी की एक ही बूँद स्त्री के गर्भ में जाने से साढ़े तीन हाथ का मोटा-ताजा, विद्वान और कलाकार मनुष्य के रूप में तैयार हो जाता है सिंह, हाथी आदि जंतु बन जाते हैं! यह तो इंद्रजाल ही मालूम होता है! मगर है यह काम किसी अदृश्य हाथ या दिव्य शक्ति का ही। इसलिए उसकी ही पूजा-आराधना करें तो मानव-समाज का कल्याण हो। वह यदि जरा-सी भी नजर फेर दे तो हम क्या से क्या हो जाएँ। शक्ति का भंडार ही तो वह देवता आखिर है न? जिस प्रकार आधिभौतिकवादी जड़-पदार्थों की पूजा करते हैं या यों कहिए कि इन्हीं के अध्ययन में दिमाग खर्चना ठीक मानते हैं, ठीक वैसे ही आधिदैवतवादी देवताओं के ही ध्यान, अंवेषण आदि को कर्तव्य समझते हैं।

आध्यात्मिक पक्ष इन दोनों को ही स्वीकार न करके यही मानता है कि हर चीज की अपनी हस्ती होती है, सत्ता होती है, अपना अस्तित्व होता है। वही उसकी अपनी है, स्व है, आत्मा है। उसे हटा लो, अलग कर दो। फिर देखो कि वह चीज कहाँ चली गई, लापता हो गई! मगर जब तक उसकी आत्मा मौजूद है, सत्ता कायम है तब तक उसमें कितनी ताकतें हैं! बारूद या डिनामाइट से पहाड़ों को फाड़ देते हैं। बिजली के क्या-क्या करामाती काम नहीं होते! आग क्या नहीं कर डालती! दिमागदार वैज्ञानिक क्या-क्या अनोखे आविष्कार करते हैं! हाथी पहाड़ जैसा जानवर कितना बोझ ढो लेता है! सिंह कितनी

बहादुरी करता है! मनुष्यों की हिम्मत और वीरता का क्या कहना! मगर ये सब बातें तभी तक होती हैं जब तक इन चीजों की हस्ती है, सत्ता है, आत्मा है। पूरे इतिहास में कितने लोग आए और चले गए। सभी अपने अपने समय के एक से बढ़ कर एक हस्ती थे। आत्मा हटा दो, सत्ता मिटा दो। फिर कुछ न देखोगे। अतएव यह आत्मा ही असल चीज है, इसी की सारी करामात है। इसका हटना या मिटना यही है कि हम इसे देख नहीं पाते। यह हमसे ओझल हो जाती है। इसका नाश तो कभी होता नहीं, हो सकता नहीं। आखिर नाश की भी तो अपनी आत्मा है, सत्ता है, हस्ती है। फिर तो नाश होने का अर्थ ही है आत्मा का रहना। यह भी नहीं कि वह आत्मा जुदा-जुदा है। वह तो सबों में - सभी पदार्थों में - एक ही है। उसे जुदा करे कौन? जब एक ही रूप, एक ही काम, एक ही हालत ठहरी, तो विभिन्नता का प्रश्न ही कहाँ उठता है? जो विभिन्नता मालूम पड़ती है वह बनावटी है, झूठी है, धोखा है, माया है। यह ठीक है कि शरीरों में ज्ञान के साधन होने से चेतना प्रतीत होती है। मगर पत्थर में यह बात नहीं। लेकिन आत्मा का इससे क्या? आग सर्वत्र है। मगर रगड़ दो तो बाहर आ जाए। नहीं तो नहीं! ज्ञान को प्रकट करने के लिए इंद्रियाँ आग के लिए रगड़ने के समान ही हैं। इस तरह आध्यात्मिक पक्षवाले सर्वत्र आत्मा को ही देखते हैं, ढूँढ़ते हैं। उसे ही परमात्मा मानते हैं।

वहीं अध्यात्म का शाब्दिक अर्थ है-आत्मा से संबंध, आत्मा-परमात्मा संबंधी विचार, आत्मबोध आदि। ईश्वर-तत्व की प्राप्ति होने पर व्यक्ति चेतन व सहज हो जाता है, क्योंकि वह अविनाशी, सनातन और परमसत्ता का ही अंश है।

अधिभूत (अधिभूत)।—तीन शब्द, अर्थात। अधिभूत , अधिदैव और अध्यात्म - आज एक त्रय के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन इनका उपयोग अकेले या जोड़े में भी किया जाता है। अधिभूत-अध्यात्म , अधिभूत-अधिदैव , अधिदैव-अध्यात्म , उनका क्रम महत्वहीन है। मूल रूप से, ये तीनों बाहरी या मूर्त (अधिभूत) के लिए खड़े हैं, अमूर्त को दिव्य (अधिदैव) के रूप में वर्णित किया गया है और जो शरीर, मन, आत्मा, आदि (अध्यात्म) के साथ पहचाने जाने वाले 'स्वयं' से संबंधित है।

अधिभूत को नाशवान प्रकृति के रूप में समझाया गया है क्योंकि यह आकस्मिक प्राणियों से संबंधित है। अधिभूत शब्द की उत्पत्ति भू धातु से हुई है - 'बनना' जिसमें क्त प्रत्यय लगा है । अधि उपसर्ग के साथ , भूति नपुंसक अवर्णनीय यौगिक अधिभूतम् बन जाती है ।

अधिभूत उन सभी चीज़ों को दर्शाता है जो भौतिक या मौलिक अस्तित्व से संबंधित हैं। मौलिक सृष्टि में पाँच प्रकार के विभाग होते हैं। तैत्तिरीय-आरण्यक (7.7.1) में उनका उल्लेख इस प्रकार है:

लोकपञ्चक (पाँच गुना संसार):

पृथिवी (पृथ्वी),

अन्तरिक्ष (अंतरिक्ष),

द्यौ (स्वर्ग),

दिशास (मुख्य क्वार्टर),

अवन्तरादिशा (मध्यवर्ती तिमाही)।

देवतापञ्चक (पाँच गुना देवता):

अग्नि (अग्नि),

वायु (हवा),

आदित्य (सूर्य),

कैंड्रामास (चंद्रमा),

नक्षत्राणि (सितारे)।

द्रव्यपञ्चक (पाँच गुना पदार्थ):

आपस (जल),

ओषध्यास (जड़ी-बूटियाँ, पौधे),

वनस्पति (पेड़),

आकाश (अंतरिक्ष, ईथर),

आत्मान (स्वयं, शरीर)।

इन तीनोंको समझनेके लिये यहाँ इनके छः भेद किये गये हैं -- परमात्माके दो भेद -- ब्रह्म (निर्गुण) और अधियज्ञ (सगुण)। जीवके दो भेद -- अध्यात्म (सामान्य जीव जो कि बद्ध हैं) और अधिदैव (कारक पुरुष जो कि मुक्त हैं)। संसारके दो भेद -- कर्म (जो कि परिवर्तनका पुञ्ज है) और अधिभूत (जो कि पदार्थ हैं)।

परमात्मा अर्थात परब्रह्म ने जब यह संकल्प लिया कि उसे एक से अनेक होना है तो यह विसर्ग अर्थात ब्रह्मांड की रचना का कारक अर्थात कर्म हुआ। यही विसर्ग हर प्राणी का मूल कर्म माना गया और हर प्राणी कर्म से सृष्टि में विस्तार को प्राप्त करता है। किंतु जब महाप्रलय होता है तो प्रकृति निष्क्रिय हो जाती है और समस्त प्राणियों के कर्म नही बनते और प्राणियों की सुषुप्त अवस्था रहती है। इस ब्रह्मांड की रचना का आधार परब्रह्म का संकल्प है कि उसे एक से अनेक होना है। आज वैज्ञानिक भी इसी संकल्प पर अनुसंधान कर के बिग बैंग पर कार्य कर रहे है। आगे भी हम ऋग्वेद के नासदिये सूक्त में इस के बारे में पढ़ेंगे कि वेद और आधुनिक विज्ञान की क्या समांतर धारणाएं है। हमारी संस्कृति अनुसंधान पर आधारित संस्कृति है, यह कोरी कल्पना नही है।

।। हरि ॐ तत सत। 8.03 विशेष ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.4॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥

"adhibhūtaḿ kṣaro bhāvaḥ,
puruṣaś cādhidaivatam..।
adhiyajño 'ham evātra,
dehe deha-bhṛtāḿ vara"..।।

भावार्थ:

हे शरीर धारियों मे श्रेष्ठ अर्जुन! मेरी अपरा प्रकृति जो कि निरन्तर परिवर्तनशील है अधिभूत कहलाती हैं, तथा मेरा वह विराट रूप जिसमें सूर्य, चन्द्रमा आदि सभी देवता स्थित है वह अधिदैव कहलाता है और मैं ही प्रत्येक शरीरधारी के हृदय में अन्तर्यामी रूप स्थित अधियज्ञ (यज्ञ का भोक्ता) हूँ। (४)

Meaning:

Adhibhootam is perishable existence. Adhidaiva is the person. And I only am adhiyagnya in this body, O eminent among the embodied.

Explanation:

Three out of Arjuna's seven questions were answered by Shri Krishna in the previous shloka. Here, three more questions are answered: what is adhibhootam, what is adhidaiva and what is adhiyagnya.

Let us start with the definition of adhibhootam, which the shloka terms as perishable existence. The universe is a kaleidoscope of all the physical manifestations of the five elements of nature: earth, water, fire, air, and space. This ever-changing universe is called adhibhuta. All the five elements come under the adhibhūtam; the Sun, moon stars, etc. come under adhibhūtam; Everything like rivers, mountains, they all come under adhibhūtam. Even our physical bodies come under adhibhūtam; because the bodies also are perishable; kṣaraḥ bhāvaḥ; any doubt? It is perishable. That is why we look for security; If it is imperishable, we do not require security; Therefore, the entire perishable material world is called adhibhūtam; So the fourth question is answered It refers to everything in the universe that is visible.

With regards to our example, it refers to everything in the movie that is visible except Tom. So, for example, if a scene in the movie comprises Tom sitting in a classroom, then everything in the classroom is adhibhoota: his classmates, his teacher, the benches, the windows, the walls and so on.

The one common quality that they share is that they are perishable, they have a beginning and an end. When the movie starts, we come to know that the classroom exists. When the movie ends, the classroom is no more.

Next, let us look at the definition of adhidaiva. Literally, it is defined as "purusha" or person in the shloka. But what it really means is the creative or intelligent principle that resides within every living and non- living object in universe. It determines the fate of the universe and holds the universe together. Here the word puruṣaḥ means the hiraṇyagarbha; means in śāstric language total consciousness associated with the total mind. And therefore, associated with total knowledge. If you remember Tatva Bodha, samaṣṭi sukṣma śarīra sahita caitanyam is hiraṇyagarbha; Consciousness associated with total subtle body. If you do not know or remember what subtle body is, you take it as mind; therefore, consciousness associated with the total mind is called hiraṇyagarbha. And that hiraṇyagarbha alone is called a presiding deity from the standpoint of every organ.

Although the devatas or the celestial gods administer the different departments of the universe, God has sovereignty, even over the devatas. He is Virāṭ Purusha, the complete cosmic personality who encompasses the entire material creation. Hence, God is called Adhidaiva.

So, the presiding deity of the eye is sūrya dēvathā and the presiding deity of the ears is srothasya dig dēvathā. So thus, we have got presiding deities for every organ; all the presiding deities put together is called hiraṇyagarbha; that hiraṇyagarbha is called adhi daivam.

From the perspective of our example, adhidaiva is the movie script. The character Tom may not know why he gets into an accident, or wins an unexpected lottery, but the script knows exactly why it happens, and how it fits into the entire movie. The script determines the fate of the movie. It also ensures that what we see is harmonious and logical, not a random disjointed series of images.

Now, let's examine what is meant by adhiyagnya. Shree Krishna says that as the Supreme Soul or Paramatma, He dwells in the hearts of all living beings of the universe. He is the one who bestows rewards for all our actions and the presiding divinity for all the yajna (sacrifices). Thus, He is also called Adhiyajna,

or the Lord of all sacrifices. Therefore, all yajna should be performed, for the satisfaction of this Supreme Divine Personality. Krishna says aham eva; aham means Krishna the Lord himself Ishvara is adhiyajñaḥ; adhiyajñaḥ is Ishvara.
And what is the definition of Ishvara in tatva bodha; if you remember Tatva Bodha. Ishvara is defined as consciousness associated with the total karaṇa prapañcha. So far, we have defined the light that illuminates Tom (adhyaatma), the light that illuminates everything else (adhibhoota), the creative intelligence of the movie (adhidaiva), the mechanism of projection (karma), and the light itself (brahman). But there is one more aspect that is missing in this scheme.

From the minute Tom wakes up in the morning to when he goes to bed at night, he is not idle. He is active in this world. He transacts with his family, his friends, his teachers, even strangers. There is a give-and-take happening throughout the day that compels him to act. Shri Krishna says that this world of activity and relationships is termed as adhiyagnya.

Now we come to the key point. Addressing Arjuna fondly as "eminent among the embodied", Shri Krishna asserts that adhyaatma, adhidaiva, adhibhoota, karma and adhidaiva are nothing but Ishvara. Ishvara and brahman are the same, it is just that one is with form, and one is formless. Similarly, everything that we see on the screen is nothing but a modification of the light of the projector. Whatever Tom does or experiences in the movie is just an illusion. When the film strip stops moving, we see the formless white light on the screen.

Next, Shri Krishna starts answering the seventh question, which makes up the bulk of this chapter.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन द्वारा पूछे गए सात प्रश्न में तीन का उत्तर पिछले श्लोक में दिया गया। अब आगे तीन प्रश्न का उत्तर देते हुये भगवान श्री कृष्ण कहते है।

अपरा प्रकृति और उस के परिणाम से उत्पन्न जो विनाशशील तत्व है, जिस का प्रतिक्षण क्षय होता है, इसे क्षरभाव भी कह सकते है। यह क्षरभाव शरीर, इंद्रियाओ, मन, बुद्धि, अहंकार, भूत एवम विषयो रूप में प्रत्यक्ष हो रहा है। यही अधिभूत है अर्थात जितना कुछ दृश्य प्रपंच है, जो कुछ भी नाशवान पदार्थ है वह सब विनाश धर्मी होने से अधिभूत है। यह भी माना गया है इस संसार मे समस्त पदार्थ पंच तत्व अर्थात पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवम आकाश से बने है। जिन्हें पंच महाभूत भी कहते है। नाशवान या क्षर का कोई समय मूल्यांकन नही है। इसलिये महाप्रलय में समस्त प्रकृति का विसर्जन होजाता है,

इसलिये ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ भी वह क्षर है। ब्रह्म को अक्षर कहा गया, तो उस के विपरीत जो भी क्षर है, वह समस्त अधिभूत है।

आठवें श्लोक की प्रस्तावना से ले कर अभी तक आदिदेव के बारे के काफी कुछ लिखा गया। यदि इस सभी को हम सब इकठ्ठा करे तो यह माना जाता है जड़ पदार्थ स्वयं में कुछ भी क्रिया या कर्म नही कर सकता। उत्पत्ति विनाश धर्मी प्रत्येक पदार्थ रूपी पुर में स्थित चेतन रुप देवशक्ति जिस के अनुग्रह से ये सब विकार सिद्ध होते है अर्थात समष्टि इंद्रियाओ तथा अन्तःकरण में ज्ञान व क्रिया व्यापार जिस के अनुग्रह से सिद्ध होता है उस दैवी शक्ति को अधिदेव कहते है। कुछ लोग कहते है जड़ पदार्थ सृष्टि में व्यापार नही करते, किन्तु उन में से प्रत्येक में कोई न कोई सचेतन पुरुष या देवता है अतः किसी भी जड़ पदार्थ की सहायता के लिये हमें उस के सचेतन पुरुष अर्थात उस के देवता की पूजा करनी चाहिये। क्षर में जो अक्षर तत्व है उसी को ब्रह्म समझो। पुरुष शब्द से सूर्य का पुरुष, जल का देवता वरुण पुरुष इत्यादि सचेतन सूक्ष्म देहधारी देवता जिन में हिरण्यगर्भ अर्थात ब्रह्मा भी सम्मलित है। अधि का अर्थ पहले भी बताया हुआ है कि अधि उपसर्ग उस से संबंधित या उस मे रहने वाला। इस के अनुसार अधिदेव का अर्थ अनेक देवताओ के रूप में रहने वाला तत्व। इस सिंद्धान्त के कारण ही हिन्दू धर्म मे 33 कोटि दैवी देवताओ की बात की गई। यह 33 कोटि सचेतन आत्मा ही एक परमात्मा का स्वरूप है इसलिये भगवान कहते है कि मैं ही हर जड़ पदार्थ में, चेतन में स्थित अधिभूत एवम अधिदेव हूँ।

सूक्ष्म शरीर में चेतना अर्थात आत्मा का प्रविष्ट होना तेजस हुआ और इस तेजस की प्रत्येक इकाई में महंता होने से वह हिरण्यगर्भ कहलायी। यही हिरण्यगर्भ वो देव पुरुष होते है जो प्रकृति की विभिन्न कार्यों का संचालन करते है जिन्हे हम देवता भी कहते है और यही अधिदेव भी है।

नदियों में पानी बहना, मौसम परिवर्तन, हवा का बहना, फूल का खिलना सब किसी न किसी के देव के अधीन है, इसलिये भगवान कहते है मुझे जो जिस रूप और भाव से पूजता है मैं उसे वैसा ही फल प्रदान करता हूँ। यही ब्रह्म का देव स्वरूप अधिदेवत है। आदिवासी पत्थर, पेड़, नदी किसी भी को देव समझ कर पूजते है, वह ब्रह्म को पूजते है, उस का अधिपत्य जिस देव का होता है, उन्हें वही फल मिलता है।

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की देह में स्थित विभिन्न आत्मा को देखा जाए तो यह असंख्य देह ही अधिदेह कहलाती है।

इस देह में कर्ता भोक्ता रूप से जितना कुछ व्यापार हो रहा है वो सब यज्ञ रूप है और इस जीवात्मा के भोग के लिये है। अर्थात भोजन, कर्म, शयन, पूजन आदि समस्त व्यापार यानि सम्पूर्ण भोग रूप यज्ञ की सिद्धि अंतर्यामी ले अधिष्ठतत्व में ही हो रही है। जो मन एवम इंद्रियाओ में अंतस्थित हो कर चला रहा है वो अन्तर्यामी तेरी आत्मा मै परमात्मा ही हूँ। इस भोग रूप यज्ञ अधिष्ठाता अर्थात अधियज्ञ इस देह में वह अन्तर्यामी मैं परमात्मा ही हूँ। यज्ञ ही विष्णु है इस श्रुति के अनुसार सब यज्ञों का अधिष्ठाता जो विष्णु नामक देवता है वह अधियज्ञ है। इस देह में जो यज्ञ है उसका अधिष्ठाता वह विष्णुरूप अधियज्ञ मैं ही हूँ। यज्ञ शरीर से ही सिद्ध होता है अतः यज्ञ का शरीर से नित्य सम्बन्ध है इसलिये वह शरीर में रहने वाला माना जाता है।

अध्यात्म दृष्टि से क्षर उपाधियाँ हैं शरीर इन्द्रियाँ मन और बुद्धि। पुरुष अधिदैव है। पुरुष का अर्थ है पुरी में शयन करने वाला अर्थात् देह में वास करने वाला। वेदान्तशास्त्र के अनुसार प्रत्येक इन्द्रिय मन और बुद्धि का अधिष्ठाता देवता है उन में इन उपाधियों के स्वविषय ग्रहण करने की सार्मथ्य है। समष्टि की दृष्टि से शास्त्रीय भाषा में इसे हिरण्यगर्भ कहते हैं।

इस देह में अधियज्ञ मैं हूँ वेदों के अनुसार देवताओं के उद्देश्य से अग्नि में आहुति दी जाने की क्रिया यज्ञ कहलाती है। अध्यात्म (व्यक्ति) की दृष्टि से यज्ञ का अर्थ है विषय भावनाएं एवं विचारों का ग्रहण। बाह्य यज्ञ के समान यहाँ भी जब विषय रूपी आहुतियाँ इन्द्रियरूपी अग्नि में अर्पण की जाती हैं तब इन्द्रियों का अधिष्ठाता देवता (ग्रहण सार्मथ्य) प्रसन्न होता है जिसके अनुग्रह स्वरूप हमें फल प्राप्त होकर अर्थात् तत्सम्बन्धित विषय का ज्ञान होता है। इस यज्ञ का सम्पादन चैतन्य आत्मा की उपस्थिति के बिना नहीं हो सकता। अत वही देह में अधियज्ञ कहलाता है।भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा यहाँ दी गयी परिभाषाओं का सूक्ष्म अभिप्राय या लक्ष्यार्थ यह है कि ब्रह्म ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य है और शेष सब कुछ उस पर भ्रान्तिजन्य अध्यास है।

तीसरे और चौथे श्लोक में जो ब्रह्म अध्यात्म कर्म अधिभूत अधिदैव और अधियज्ञ का वर्णन हुआ है उसे समझने मात्र के लिये जल का एक दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे जब आकाश स्वच्छ होता है तब हमारे और सूर्य के मध्य में कोई पदार्थ न दीखने पर भी वास्तव में वहाँ परमाणुरूप से जलतत्त्व रहता है। वही जलतत्त्व भाप बनता है और भाप के घनीभूत होने पर बादल बनता है। बादल में जो जलकण रहते हैं उन के मिलने से बूँदें बन जाती हैं। उन बूँदों में जब ठण्डक के संयोग से घनता आ जाती है तब वे ही बूँदें ओले (बर्फ) बन जाती हैं -- यह जलतत्त्व का बहुत स्थूल रूप हुआ। ऐसे ही निर्गुणनिराकार ब्रह्म परमाणुरूप से जलतत्त्व है अधियज्ञ (व्यापक विष्णु) भापरूप से जल है अधिदैव (हिरण्यगर्भ ब्रह्मा) बादलरूप से जल है अध्यात्म (अनन्त जीव) बूँदेंरूप से जल है कर्म (सृष्टिरचनारूप कर्म) वर्षा की क्रिया है और,अधिभूत (भौतिक सृष्टिमात्र) बर्फरूप से जल है।

तात्त्विक दृष्टि से तो सब कुछ वासुदेव ही है। इस में भी जब विवेक दृष्टि से देखते हैं तब शरीर शरीरी प्रकृति पुरुष - ऐसे दो भेद हो जाते हैं। उपासना की दृष्टि से देखते हैं तो उपास्य (परमात्मा) उपासक (जीव) और त्याज्य (प्रकृति का कार्य - संसार) - ये तीन भेद हो जाते हैं। इन तीनों को समझने के लिये यहाँ इन के छः भेद किये गये हैं -- परमात्मा के दो भेद - ब्रह्म (निर्गुण) और अधियज्ञ (सगुण)। जीव के दो भेद - अध्यात्म (सामान्य जीव जो कि बद्ध हैं) और अधिदैव (कारक पुरुष जो कि मुक्त हैं)।संसार के दो भेद - कर्म (जो कि परिवर्तन का पुञ्ज है) और अधिभूत (जो कि पदार्थ हैं)

अतः सत्य, अव्यक्त, नित्य, अक्षर एक मात्र निर्गुण ब्रह्म है। ब्रह्म से क्षर अधिभूत हुए और इसी से अधिदेव अधिभूत को संचालन हेतु हुए। इस सब का कार्य या क्रिया कर्म कहलाया और कर्म पर प्रकृति के तीन गुण का विभिन्न मात्राओं में प्रभाव अध्यात्म अर्थात स्वभाव बना और इन सब को भोक्ता के रूप में ब्रह्म ही अधियज्ञ बन कर सब के हृदय में निवास करता है। यह अर्जुन का प्रश्न था कि वह रहता कहां है तो विभिन्न स्वरूप में ब्रह्म ही है और भोक्ता अर्थात सगुण स्वरूप में सब के हृदय में वास करता है।

परमात्मतत्त्व अत्यन्त अलौकिक और विलक्षण है। उस तत्त्व का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उस तत्त्व को इन्द्रियाँ मन और बुद्धि नहीं पकड़ सकते अर्थात् वह तत्त्व इन्द्रियाँ मन और बुद्धि की परिधि में नहीं आता। हाँ इन्द्रियाँ मन और बुद्धि उस में विलीन हो सकते हैं। साधक उस तत्त्व में स्वयं लीन हो

सकता है उस को प्राप्त कर सकता है पर उस तत्त्व को अपने कब्जे में अपने अधिकार में अपनी सीमा में नहीं ले सकता।

सब संसार में परमात्मा व्याप्त हैं - सब संसार परमात्मा में है - सब कुछ परमात्मा ही हैं - सब संसार परमात्मा का है - इस प्रकार गीता में भगवान् के तरह तरह के वचन आते हैं। इन सब का सामञ्जस्य कैसे हो सब की संगति कैसे बैठे इस पर विचार किया जाता है। गीता परमात्मा को तलाश करने वालो के स्पष्ट घोषणा करती है कि तत त्वम असि, अर्थात तुम ही ब्रह्म हो। परमात्मा बाहर नही, अधियज्ञ स्वरूप प्रत्येक प्राणी के ह्रदय के परमात्मा ही निवास करता है। उस को खोजने की बजाय अपने अज्ञान को मिटाने और पहचानने की आवश्यकता है।

गीता की रचना दूरदर्शिता के साथ अत्यंत विवेक से की गई। अतः समस्त विवादों, सिंद्धान्तों, मान्यताओं एवम देवी देवताओं एवम सम्पूर्ण जगत तो एक मात्र परमात्मा से जोड़ा गया। ज्ञान- विज्ञान, क्षर-अक्षर या अपरा-परा प्रकृति का एक ही स्वरूप परमात्मा ही बताया गया जो विभिन्न रूप में सब मे स्थित है। गीता वेद और उपनिषद में विभिन्न ऋषियों के अनुभव, मान्यताओं और मोक्ष के मार्ग को एक सूत्र में पिरोती है, इसलिये सब कुछ परब्रह्म ही है। यह सृष्टि परब्रह्म का संकल्प है। इसलिये परब्रह्म ने जब अपना विस्तार करने का संकल्प किया और एक से अधिक होने का संकल्प लिया तो इस सृष्टि की रचना हुई। यह संकल्प परब्रह्म का अज्ञान भी कहा गया है, इसलिये इसे असत और परब्रह्म को सत भी कहा गया है। जिसे हम आगे विस्तार से पढ़ेंगे।

दूसरे श्लोक में अर्जुन का सातवाँ प्रश्न था कि अन्तकाल में आप कैसे जानने में आते हैं इस का उत्तर हम अगले श्लोक में पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.04 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.5॥

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्‌ ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

"anta-kāle ca mām eva,
smaran muktvā kalevaram..।
yaḥ prayāti sa mad-bhāvaḿ,
yāti nāsty atra saḿśayaḥ"..।।

भावार्थ:

जो मनुष्य जीवन के अंत समय में मेरा ही स्मरण करता हुआ शारीरिक बन्धन से मुक्त होता है, वह मेरे ही भाव को अर्थात मुझको ही प्राप्त होता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। (५)

Meaning:

One who, even during the time of departure, abandons his body while remembering me, he achieves my true nature, in this matter there is no doubt.

Explanation:

In the previous two verses, 3 and 4, Krishna answered all the six questions very briefly. And now Krishna wants to answer the seventh question very elaborately. In fact, the rest of the chapter beginning from verse No.5 up to the last verse No.28, Krishna is answering the seventh question; for six questions two verses; and for one question five to 28; 24 verses; both inclusive; do not ask how 24; because by way of answering this question, Krishna wants to introduce an important topic I said.

The remainder of this chapter is the answer to the fundamental questions raised by Arjuna: “How does one attain Ishvara at the time of death?” Having addressed all the other questions, Shri Krishna begins to answer that most important question in this shloka. He says that only the one who remembers Ishvara at the time of death will attain Ishvara.

We now have a definite “action item” from Shri Krishna. **He asserts that our final goal in life should be this: to remember Ishvara at the time of death.** Shri Krishna assures it is so, because he says, “in this matter there is no doubt”. It is clearly spelled out for us.

He uses the words mad bhāvaṁ, which means “godlike nature.” Therefore, one can achieve the cherished goal of God-realization by consciously absorbing one’s mind in the transcendental Names, Forms, Virtues, Pastimes, and Abodes of God, even at the time of death.

At first glance, it may seem straightforward. All we have to do is to remember Ishvara at the time of death. But it is not so. In most cases, we may not know when we die. We could die in an accident. We could have lost our mental faculties. Our attachment towards our family will occupy our minds. There are so many factors that will prevent us from remembering Ishvara only at the time of death.

It is one’s state of consciousness and the object of their absorption at the time of death; that determines their next birth. Shree Krishna will explain this principle in the next verse.

So then, how do we get around this problem? Shri Krishna addresses it shortly. First, he explains why our thought at the time of death is so important.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन के सातवें प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान कहते कि जो पुरुष अन्तकाल में - मरण काल में मुझ परमेश्वर - विष्णु का ही स्मरण करता हुआ शरीर, छोड़कर जाता है वह मेरे भाव को अर्थात् विष्णु के परम तत्त्व को प्राप्त होता है। इस विषय में प्राप्त होता है या नहीं ऐसा कोई संशय नहीं है। वस्तुतः इस का अर्थ मात्र प्रयाण काल मे ही स्मरण करने तक सीमित नही है, वरन अंतकाल तक स्मरण करना है। दो घण्टे भजन करने के बाद दुकान खोल के व्यापार करते हुए छल कपट करना या छद्मवेश में भगवान का स्मरण करना, कोई भक्ति का भाव नही है।

ज्ञानी भक्त के अतिरिक्त तीन प्रकार् के भक्त जो कामना के साथ, आर्त हो कर या जिज्ञासा वश परमात्मा की आराधना करते है, उन के लिए परमात्मा का कहना है जो जिस भाव से और जिस रूप में मुझे पूजते है, मैं उन की उसी देवता से कामना की पूर्ति करता हूँ। इन्द्रिय, मन, बुद्धि और चेतन मिला कर जीव का स्वभाव ही अध्यात्म है, अधियज्ञ स्वरूप में परमात्मा ही जीव में निवास करता है, अतः अंत समय मे जिस भाव, कामना, आसक्ति से जीव शरीर त्यागता है, परमात्मा उसी के अनुरूप उस को नया शरीर प्रदान कर देता है।

यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि स्मरण को मदभाव अर्थात परमात्मा के भाव में करने की कहा है। जब प्रयाण काल में स्मरण करते हुए भी कोई कामना या आसक्ति हो और ब्रह्म के भाव में स्मरण न हो तो पुनः जन्म भी कामना या आसक्ति से अनुसार मिलेगा। कुछ लोक अज्ञान में मुक्ति को स्वर्ग, वैकुंठ या ब्रह्म लोक को मान लेते है। किंतु जब परमब्रह्म के अतिरिक्त सभी नश्वर और परिवर्तनशील है तो स्वर्ग, वैकुंठ या ब्रह्म में भी निवास कर्म मुक्ति हो सकता है किंतु जीवमुक्ति नही। जीव मुक्ति के लिए प्रयाण काल में स्मरण परब्रह्म के मदभाव में होना आवश्यक है।

देह से विलग होने के समय जीव के मन में उस विषय के सम्बन्ध में विचार होंगे जिसके लिए वह प्रबल इच्छा या महत्वाकांक्षा रखता था चाहे वह इच्छा किसी भी जन्म में उत्पन्न हुई हो। इस प्रकार की मान्यता युक्तियुक्त है।शरीर का निधन शुद्ध अंत काल नहीं। मरने के बाद भी शरीर का क्रम पीछे लगा रहता है। संचित संस्कारों की सतह के मिट जाने के साथ ही मन का निरोध हो जाता है और वह मन भी जब विलीन हो जाता है तो वो ही अंतकाल है। क्योंकि अंत काल अनिश्चित है एवम अंतकाल में मन का निरुद्ध होना भी अनिश्चित है। फिर भी अंत काल मे भगवान का स्मरण हो जाये तो वो ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

मरण के पूर्व की जीव की यह अन्तिम प्रबल इच्छा उसकी भावी गति को निश्चित करती है। जो जीव अपने जीवन काल में केवल अहंकार और स्वार्थ का जीवन जीता रहा हो और देह के साथ तादात्म्य करके निम्न स्तर की कामनाओं को ही पूर्ण करने में व्यस्त रहा हो ऐसा जीव वैषयिक वासनाओं से युक्त होने के कारण ऐसे ही शरीर को धारण करेगा जिसमें उस की पाशविक प्रवृत्तियाँ अधिक से अधिक सन्तुष्ट हो सकें। इस के विपरीत जब कोई साधक स्वविवेक से कामुक जीवन की व्यर्थता को पहचानता है और इस कारण स्वयं को उन बन्धनों से मुक्त करने के लिए आतुर हो उठता है तब देह त्याग के

पश्चात् वह साधक निश्चित ही विकास की उच्चतर स्थिति को प्राप्त होता है। इसी युक्तियक्त एवं बुद्धिगम्य सिद्धांत के अनुसार वेदान्त यह घोषणा करता है कि मरणासन्न पुरुष की अन्तिम इच्छा उसके भावी शरीर तथा वातावरण को निश्चित करती है।

यहां यह कहना भी सही होगा कि अंतकाल में भी यदि परमात्मा का ध्यान हो जाये तो भी जीवन भर के कर्मो से मुक्ति संभव है अर्थात परमात्मा की कृपा कभी भी जीव के लिये कम नही है, यह तो जीव है कि उसे कब परमात्मा को प्राप्त करना है। परमात्मा का तो एक ही भाव है, शरणागत एवम प्रेम। जो भी जब भी उस की शरण गया उसे मुक्ति मिलना ही है। उसे परमात्मा की शरण अंतकाल तक निभानी है।

यही कारण हिन्दू धर्म मे मरने वाले व्यक्ति को गीता पाठ या भगवान का भजन सुनाया जाता है, उस के सम्मुख भगवान का चित्र रखा जाता है। मुख में गंगा जल एवम तुलसी दी जाती है। कैसे भी अंत समय मे भगवान का स्मरण हो, मन का निरुद्ध हो और जीव को जन्म मरण से मुक्ति मिले इस का ध्यान रखना पड़ता है।

व्यवहारिक और वैज्ञानिक तथ्य भी यही है कि आसक्ति और कामना, मोह और ममता की तरंग यदि मृत्यु के समय अर्थात पंच महाभूत शरीर के त्याग के समय रहती है तो तरंग सूक्ष्म शरीर के साथ जुड़ जाती है और सूक्ष्म शरीर को उस कामना या आसक्ति, मोह या ममता के अनुरूप जो भी शरीर दिखता है, उस में प्रविष्ट करवा देती है। इसलिए परब्रह्म का स्मरण होने से उसे कोई भी शरीर उस के अनुरूप नही मिलने से, वह मुक्त हो कर परब्रह्म में विलीन हो जाती है।

ईश्वर का चिंतन अंत समय पर हो जाये इस के लिए ही मन का निरुद्ध यदि किया जाए तो स्मरण हर वक्त ही करना चाहिए। इस का कारण हम अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.05।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.6॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

"yaḿ yaḿ vāpi smaran bhāvaḿ,
tyajaty ante kalevaram..।
taḿ tam evaiti kaunteya,
sadā tad- bhāva- bhāvitaḥ"..।।

भावार्थ:

हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य अंत समय में जिस-जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह उसी भाव को ही प्राप्त होता है, जिस भाव का जीवन में निरन्तर स्मरण किया है। (६)

Meaning:

When (one) thinks of whatever state, while leaving the body at the end, O Kaunteya, (one) always having been absorbed in that, attains only that.

Explanation:

In this verse, Shree Krishna uses the word abhyāsa, which means to practice. He says that we must train our mind and form a habit of always meditating upon God. This practice is not to be done at fixed times or regular intervals but continuously as part of our daily life alongside our worldly activities throughout the day.

When one is continuously engaging in devotion, with complete surrender to God, their purified mind will gradually get fully absorbed in God-consciousness. Such souls receive the divine grace of God that liberates them from the bondage of maya. Then God bestows upon these souls His unlimited divine bliss, divine knowledge, and divine love. They become God-realized while they are still alive and live a complete life. Eventually, when they die, their soul ascends to the Divine Abode of God.

The Shrimad Bhagavatam contains the story of the great king Bharata. He was an accomplished king. He ran his kingdom well during his lifetime, and later retired into the forest to lead a life of austerity. But he developed a soft corner for a baby deer and became so attached to it that he would only think of the deer instead of focusing on his austerities. It is said that in his next life, he was born as a deer.

In this shloka, Shri Krishna asserts that whatever we think about at the time of death will determine our fate. But more importantly, he also states that the thought at the time of death is not really something that we can control. It is in fact, an outcome of our pattern of thinking throughout our lives.

Watch your thoughts; they become the words.

Watch your words, they become your actions.

Watch your action, they become your habit.

Watch your habit; they become your character.

Watch your character, it becomes your destiny.

If we examine our thoughts over the course of our day, we will notice a great variety of thinking. For most of us it will be a mix of mostly family-related and work-related thoughts, mixed with some thoughts about spirituality. But in the background, we will always have a thought that is going on all the time. It will come to the forefront when we are alone, or when we have opened our eyes after sleeping, but not fully woken up. For King Bharata, that persistent background thought was that of the deer.

So then, our deepest love, our deepest interest and our deepest longing will bear fruit in our next life. Having known this, what should we now do? This is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जब भी यह पंच भूत देह से प्राण, इंद्रिय, मन व बुद्धि सहित जीवात्मा का वियोग होता है उसे अंत काल कहते है।

पूर्व के संस्कार, संग, आसक्ति, कामना, भय एवम अध्ययन आदि के निरंतर जीव जिस भी भाव का सतत चिंतन करता है उसे उसी भाव से भावित समझना चाहिए।

अन्तकाल में जिस भाव का - जिस किसी का चिन्तन होता है शरीर छोड़ने के बाद वह जीव जब तक दूसरा शरीर धारण नहीं कर लेता तब तक वह उसी भाव से भावित रहता है अर्थात् अन्त काल का चिन्तन (स्मरण) वैसा ही स्थायी बना रहता है। अन्तकाल के उस चिन्तन के अनुसार ही उस का मानसिक शरीर बनता है और मानसिक शरीर के अनुसार ही वह दूसरा शरीर धारण करता है। कारण कि अन्तकाल के चिन्तन को बदलने के लिये वहाँ कोई मौका नहीं है शक्ति नहीं है और बदलने की स्वतन्त्रता भी नहीं है तथा नया चिन्तन करने का कोई अधिकार भी नहीं है। अतः वह उसी चिन्तन को लिये हुए उसी में तल्लीन रहता है।

इस को हम फ़ोटो खिंचने की प्रक्रिया से समझ सकते है कि आप की फ़ोटो कैमरे के क्लिक के समय जो भी स्वरूप, भागभंगीमा के साथ होगी वो ही वह पकड़ कर खींच लेगा। उसे बदल नही सकते।

पूर्व के श्लोक में यह भी स्पष्ट किया गया है कि जीव अंत समय मे जिस भी भाव से भावित होगा उसे अगला जन्म उसी भाव के अनुसार मिलेगा। राजा जड़भरत जी का उदाहरण दे कर हम कह सकते है कि राजा जड़भरत राज्य को वृद्ध अवस्था मे त्याग कर वन के मोक्ष के लिये संयास लिये। जीवन भर अच्छे कर्म करते रहे किन्तु अंत मे उन का भाव जन्म लेते हिरन के बच्चे को बचाने में था तो उन्हें हिरन का जन्म मिला।

ऐसा माना जाता है आत्मा के ऊपर एक सूक्ष्म लिंग शरीर का आवरण हमारी कामना, आसक्ति और कर्म के फल का होता है। यह सूक्ष्म शरीर ही कर्मफल, कामना, आसक्ति के अनुसार मृत्यु के बाद आत्मा को एक शरीर से दूसरे शरीर मे ले जाती है। आत्मा स्वयं में साक्षी, अकर्ता, नित्य और उदासीन

है। इसलिये अंत समय की कामना, आसक्ति स्मरण ही वह सूक्ष्म लिंग शरीर का धागा बनता है जो जीव को अगली योनि में प्रविष्ट करवाने का साधन होता है। ज्ञान का अर्थ इस अज्ञान के सूक्ष्म शरीर से मुक्त हो कर अपने को प्राप्त होना है।

इसलिये भगवान कहते है भावना में सत्य स्वरूप परमात्मा विद्यमान है, इसलिये वो निष्फल नही होती। जीवन काल मे जिस का जैसा जैसा अचार- विचार दृढ़ रहा उस कर अभ्यास से वैसी ही भावना होती है। अंत काल मे अकस्मात और की और नही जाती। इस नियम के अनुसार इस स्थिर चित पुरुष की वृत्ति जीवन काल मे, अति सूक्ष्म बुद्धि का विषय होने से, मेरे वास्तविक सर्व साक्षी रूप में नही जुड़ी और उस का अभ्यास नही हुआ तो सगुण अथवा निर्गुण जिस जिस भाव मे यह सदा भावित रहा है, उस उस भाव के अभ्यास के बल से अंत काल मे भी उसी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर मेरे उसी रूप को प्राप्त हो जाता है। हमे याद रखना चाहिए कि जो हम बार बार करते है, वही हमारी आदत बन जाते है, ज्ञान एवम अभ्यास से अच्छे संस्कार आते है, यदि संस्कार स्वतः हमारी मानसिकता को आकर्षित करते है। इसलिये जीवन पर्यंत अच्छे संस्कारो से जीवन जिया जाए तो मृत्यु के समय भी वही भावनाएं और कामनाएं रहती है। जिन्हें धरती पर सुख चाहिये, उन्हें धरती पर, जिन्हें स्वर्ग में, उन्हें स्वर्ग में और जिन्हें मोक्ष चाहिये, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होते है। अतः अंत काल के स्मरण के अभ्यास जीवन पर्यंत ही चाहिये।

एक कहावत भी है कि जो जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है। जीव के विचार उस के समय, स्थान, कार्य, संगत, और परिस्थिति से बनते बिगड़ते रहते है, अतः सोच में परिवर्तन कामना और आसक्ति और मन के नियंत्रण पर निर्भर है। इसलिए अपनी इच्छा शक्ति को मजबूत रख कर किया गया कार्य इच्छा शक्ति के अनुसार ही होता है और अंत काल तक अपनी इच्छा शक्ति को परमात्मा के स्मरण में लगाने के जीवन पर्यंत अभ्यास की आवश्यकता है।

अतः यह सोचना कि पूर्व श्लोक के अनुसार मरण काल मे यदि भगवान का नाम लेने से उद्धार हो जाएगा और अभी मौज मस्ती कर ले तो वे यह भी जान ले कि जो बात जन्म भर रहती है वो ही मरण काल मे भी सामने आएगी। गीता के अनुसार जन्म भर एक भावना से रंगे बिना अंतकाल की यातना के समय वही भावना स्थिर नही रह सकती। अतः मनुष्य का संकल्प परमात्मा के प्रति हमेशा ही रहना चाहिये।

किसी को अपने काल का ज्ञान नहीं होता। मृत्यु से पूर्व शरीर के हालात भी सोचने लायक होंगे या नहीं पता नही। जीव का मन कभी इंद्रियों के अनुसार कामना और आसक्ति में जीता है तो कभी बुद्धि के आज्ञा से विवेक से कार्य करता है। अतः स्थिर मन की स्थिति तभी संभव है, जब जीवन पर्यंत हम परमात्मा की शरण में जा कर उसे स्मरण करते रहे।

जब अन्तकाल के स्मरण के अनुसार ही गति होती है तो फिर अन्तकाल में भगवान् का स्मरण होने के लिये मनुष्य को क्या करना चाहिये -- इसका उपाय आगे के श्लोक में पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.06।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.7॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

"tasmāt sarveṣu kāleṣu,
mām anusmara yudhya ca..।
mayy arpita- mano- buddhir,
mām evaiṣyasy asaṁśayaḥ"..।।

भावार्थ:

इसलिए हे अर्जुन! तू हर समय मेरा ही स्मरण कर और युद्ध भी कर, मन-बुद्धि से मेरे शरणागत होकर तू निश्चित रूप से मुझको ही प्राप्त होगा। (७)

Meaning:

Therefore, remember me at all times and fight. One who offers his mind and intellect to me attains me only, without a doubt.

Explanation:

The essence of the teachings of the Bhagavad Gita is in the first line of this verse. Shri Krishna gives the ultimate teaching to all of mankind in this shloka. Since the thought at the time of death determines our fate after death, and the thought of death is an outcome of our lifelong thinking, Shri Krishna instructs us to remember Ishvara at all times and perform our duties.

It has the power to make your life divine. It reiterates the definition of karma yoga and applies to people from all walks of life. Shree Krishna says to Arjun, "Do your duty with your body, and keep your mind attached to Me." As a warrior, Arjun must fight; that is his duty. However, the Lord says to Arjun that even in the middle of a battle, one should remember God. The same message is for everyone— be it farmers, engineers, doctors, students, homemakers, or any other professional.

Let us examine this instruction further. We are not asked to give up our duties, retire to a forest and constantly think of Ishvara there. Shri Krishna wants us to first remember Ishvara, and then perform duty consistent with our svadharma. The result of leading such a life is that we will attain Ishvara certainly. There is no doubt in this matter.

With this instruction, meditation takes on a whole new dimension. Typically, we confine meditation to something that we do for fifteen to thirty minutes, sitting in a solitary place as instructed in the sixth chapter. We now realize that those instructions were meant to prepare us for the kind of meditation that Shri Krishna wants us to pursue: 24/7 meditation of Ishvara.

He says that in karma yoga, there are only two conditions:

1) While doing any work, the mind should always be thinking of God.

2) The remembrance of God should be constant throughout the day and not intermittent.

How can this be possible? Our mind can only think of one thought at a time. So the way to meditate continuously is to somehow understand that everything we see, do and know is Ishvara.

The conscious mind cannot do two jobs simultaneously; the conscious mind cannot do two jobs simultaneously. It has to be committed to one thing only; but even when the conscious mind is dedicated to some work, in the sub-conscious mind, in the background, we should be clear about the ultimate priorities of life.

So what Krishna wants to say here is: Let in the background, your goal be very much remembered. Therefore, the sub- conscious can have īśvara chintha and the conscious can perform the worldly duties and when you have time away from worldly duties, at that time, your conscious mind also.

Now we understand why Shri Krishna defined the terms brahma, karma, adhibhuta, adhideva, adhyaatma, adhiyagnya at the beginning of the chapter, because all those are nothing but Ishvara. If, while performing any action, we know that the actor, the action, the instrument, the process and the result - everything is Ishvara - we will never forget Ishvara.

Even if this kind of thinking is not possible for us in the beginning, we can emulate the mind of a mother who, regardless of what she is doing, always thinks about her child in the background. By practising meditation on our favourite deity, we develop an attachment to it, so that we can recall it every time we feel distant from Ishvara.

So therefore, by practicing meditation constantly on Ishvara, we should strive to change our thinking such that our final thought will be nothing but Ishvara. This constant meditation upon Ishvara is called upaasanaa.

।। हिंदी समीक्षा ।।

श्रीमद्भगवद् गीता का यह श्लोक ईश्वर के प्रति कर्मयोगी या किसी भी योगी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो ईश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास, प्रेम के साथ स्मरण और समर्पण को सही मायने में परिभाषित करता है। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते कि तू मुझे स्मरण करते हुए युद्ध कर। मन- बुद्धि से भगवान से अर्पित हो कर युद्ध करने से उन को ही प्राप्त होगा। यहाँ स्मरण करते हुए युद्ध का अर्थ ' हरे कृष्णा या जय कन्हैया लाल की बोलते हुए तीर चलाना नही है।

परमात्मा स्मरण करते रहने का आदेश देते है तो हमे स्मरण को भी जानना आवश्यक है। स्मरण तीन प्रकार से हो सकता है 1) बोधगम्य- जैसे मिट्टी के घड़े में पानी भरने की बजाय यदि उसे पानी मे ही उतार दे तो सर्वत्र पानी रह जायेगा। ऐसे में मटका फूट भी गया तो भी पानी ही रह जायेगा। बोधगम्य स्वयं को परमात्मा के चिंतन में पूर्ण उतारने जैसा है। 2) संबंध जन्य - जब तक हम किसी के साथ जुड़े है तब तक ही स्मरण रहे तो संबंध जन्य। 3) क्रियाजन्य संबंध - अभ्यास या कार्य करते समय कार्य की कुशलता इतनी अधिक होती है कि एक कार्य के साथ दूसरा कार्य भी संभव हो जाता है - जैसे रस्सी पर चलते हुए कोई नट बिना दवाब के बातचीत भी करता है और चलता भी। अर्थात काम के साथ स्मरण भी करते रहना।

इसी प्रकार स्मरण करते हुए क्रिया भी तीन प्रकार से कर सकते है। 1) क्रिया को महत्व देते हुए स्मरण को मुख्य न समझना । जिस से कभी कभी स्मरण क्रिया करते वक्त छूट भी जाये। 2) स्मरण को महत्व देते हुए क्रिया को करना जिस से हो सकता है क्रिया बिगड़ जाए। 3) क्रिया एवम स्मरण को परमात्मा का ही काम समझते हुए करना।

यहां प्रश्न यह भी है कि एक साथ स्मरण और कार्य वो भी युद्ध जैसा जिस में चूक का अर्थ मृत्यु हो, तो कैसे होगा? किसी कार्य के निपुर्णता से करने के सारा ध्यान और दक्षता कार्य पर केंद्रित रहती है।

हमे समझना होगा कि स्मरण के लिए जो हम हृदय में धारण कर लेते है और जो हमारा आचरण और स्वभाव बन जाता है, प्रर्याप्त होता है। इस से हम अपने मूल स्वरूप को हमेशा याद रखते है। क्रिया इन्द्रिय द्वारा होती है, इंद्रियां मन से संचालित है, मन बुद्धि से नियंत्रित है। अतः अभ्यास, पठन, चिंतन और परिश्रम से व्यक्ति जो भी कार्य करना चाहता है, वह लक्ष्य साधकर, कर सकता है। इस के लिये सकाम कर्म करने से राग- द्वेष होगा जिस से अन्य दुर्गुण उत्पन्न होंगे, किन्तु निष्काम अपना कर्तव्य धर्म करने से राग- द्वेष से बचा जा सकता है। **अतः जिस के हृदय में राग-द्वेष की बजाय परमात्मा विराजमान हो जाये, वह युद्ध जैसी एकाग्रता, कठिन अभ्यास- परिश्रम और निपुणता जैसा कार्य भी परमात्मा को स्मरण करते हुए कर सकता है। व्यवहार में उच्च पढ़ाई, उच्च पद, उच्च कोटि का व्यापार आदि व्यक्ति को खूब लगन, मेहनत, कुशलता और अभ्यास से करते रहना चाहिए, किन्तु राग-द्वेष से परे, निष्काम होने से यह कार्य सफल होगा, इस मे कोई संदेह नही, सफलता का माप-दंड भी परमात्मा ही तय करे, इस के लिए उन को हृदय में बसा कर काम करना**

चाहिये। फिर आप को न तो व्यापार या नौकरी छोड़ कर, परिवार छोड़कर बाबा जी बनना है और न ही किसी भजन मंडली में जा कर भजन करते रहना है, आप जो करते है उसे और अधिक निपुणता और परिश्रम से करते रहे। भक्त हनुमान के हृदय में राम बसते थे, इसलिये वह बड़े से बड़ा काम सरलता से बिना अभिमान के करते थे। अतः स्मरण करते हुए युद्ध जैसे निपुण कार्य को छोड़ने की सलाह भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को नही दे रहे। यह सनातन ज्ञान प्रत्येक जीव के लिए है, चाहे वह कोई भी कार्य करता हो। जिन संचित और प्रारब्ध कर्मो को भोगने हेतु मनुष्य का जन्म हुआ है, उसे करे बिना भी मुक्ति नही मिलती। जीव साक्षी है, क्रियाए प्रकृति करती है, वह निमित्त है, परमात्मा ही सब करता है, यह भाव रख कर स्मरण करते हुए, अपने कर्तव्य धर्म का पालन करने की भगवान की ही है। जिन के हृदय में राम बसते हो, वह आसुरी वृति का कार्य भी नही कर सकता।

अतः किसी कार्य को करने के दक्षता, एकाग्रता, निपुर्णता, अभ्यास, श्रम, साधन, स्थान और समय सभी प्रकृति अर्थात मन, बुद्धि, इंद्रियों और शरीर के साथ उपलब्ध स्थान, साधन और समय का विषय है। और परमात्मा का संबंध अंतर्मन अर्थात हृदय में परमात्मा के चिंतन का है जो हमे हमारे स्वरूप को भूलने नही देता। इसी से हम लक्ष्य भी निर्धारित करते है और अपने स्वरूप ज्ञान रखते है। अतः भगवान का स्मरण हमे हमारे ब्रह्म स्वरूप के अंश होने का याद दिलाता रहना चाहिए, कि हमारा लक्ष्य मोक्ष है।

मोक्ष तो परमेश्वर की ज्ञान युक्त भक्ति से मिलता है । यह निर्विवाद है कि मरण के समय मे भी उसी भक्ति में स्थिर रहने के जन्म भर उस का अभ्यास करना चाहिए। किन्तु गीता कर्मयोग है इसलिये गीता कभी भी और कही भी कर्मो को त्याग करने को नही कहती। वेद और उपनिषदों में भी मुक्ति के कर्म त्याग की बात नही लिखी है। राजा जनक की दीक्षा के उपरांत उन्हें कर्म में बने रहने की सलाह दी गई थी। गीता का सिंद्धान्त है कि भगवत भक्त को स्वधर्म के अनुसार जो भी कर्म करने के लिये समय प्रदान करता है, उन सब को निष्काम बुद्धि से कर्तव्य समझ कर करते रहना चाहिये।

भगवान ने पहले भी कहा है कि तू सर्व काल मे मुझ सर्व साक्षी सर्वात्मा का चिन्तन कर जिस से कर्तृत्व एवम भोक्तव भाव से मुक्त हो। यह कदापि न सोचें कि मै यह कार्य कर रहा हूँ। हमेशा यह ही विचार रखे कि ईश्वर ने आप को इस कार्य के लिये निमित किया है।अपने कर्तव्य का पालन के लिये यह अनिच्छित प्राप्त स्वधर्म में स्वाभाविक प्रवृति अखंड रूप से बन जाये कि मै कुछ भी करने वाला नहीं हूँ। यह सब मेरे ही आत्मस्वरूप के चमत्कार है और आभास की तरंग मात्र है। यह आभास मे मैं कार्य करता हुआ चमक या दमक अवश्य रहा हूँ किन्तु मेरे स्वरूप में इन आभासों की न कोई उत्पत्ति है न नाश, न कुछ हुआ है और न ही होगा।

अर्जुन की दृष्टिकोण से युद्ध में अर्जुन को सोचना है कि न मैं इन सब बंधु बांधव और शत्रु को मारने वाला हूँ एवम न ही मेरे द्वारा यह दुर्योधन, भीष्म आदि मरने वाले है। जो भी क्रिया हो रही है वह प्रकृति द्वारा मुझे निमित्त बना कर हो रही है। मुझे अपने वर्ण के अनुसार कर्तव्य धर्म का पालन करते हुए, समर्पित भाव से युद्ध करना है और इस के परिणाम के विषय में भी अर्थात युद्ध से मुझे क्या लाभ या हानि होगी, नही विचार करना है। अपने अहम एवम मोह को त्याग कर मन एवम बुद्धि से भगवान का स्मरण करते हुए सिर्फ युद्ध करना है।

कर्ता बुद्धि बनाये रखकर मन-बुद्धि से भगवान को अर्पण यथार्थ में अर्पण नही है क्योंकि यह भाव मय है, अन्तःकरण की शुद्धि मात्र है, भगवद प्राप्ति नही, अवास्तविक भी है। भगवान का यह कथन कि हे

अर्जुन तू सर्वकाल में मुझे स्मरण करते हुआ अपने कर्तव्य पालन को करते हुए युद्ध कर, जिस से तू मुझे प्राप्त होगा। हमे उस ज्ञान स्वरूप स्मरणपन को जानना होगा।

आज व्यवहारिक जगत में हमे अपने कार्य करने की पद्धिति में मार्गदर्शन देता है कि हम जो कर रहे है उस को करते हुए भी सदा भगवान का स्मरण करें। इस के कबीर की कुछ पंक्तियां भी हम पढ़ते है। जिन का अपने आप में कितना महत्व है, पहले हम सब ने कभी नहीं सोचा होगा।

सुमिरन की सुधि यों करो ,ज्यों गागर पनिहारी ;

बोलत डोलत सुरति में ,कहे कबीर विचारि।

राजा राना राव रंक, बङो जु सुमिरै नाम।

कहैं कबीर सबसों बङा, जो सुमिरै निहकाम॥

सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।

निहकामी सुमिरन करै, पावै अविचल राम॥

जप तप संजम साधना, सब कछु सुमिरन मांहि।

कबीर जाने भक्तजन, सुमिरन सम कछु नांहि॥

ज्ञान कथे बकि बकि मरै, काहे करै उपाय।

सतगुरू ने तो यों कहा, सुमिरन करो बनाय॥

कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।

आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा काल॥

कबीर हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिंगे छूट।

घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट॥

कबीर चित चंचल भया, चहुँदिस लागी लाय।

गुरू सुमिरन हाथे घङा, लीजै बेगि बुझाय॥

कबीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम।

आदि जुगादि भक्ति है, सबका निज बिसराम॥

सुमिरन की सुधि यौं करो, ज्यौं सुरभी सुत मांहि।

कहै कबीरा चारा चरत, बिसरत कबहूं नांहि॥

सुमिरन की सुधि यौं करो, जैसे दाम कंगाल।

कहैं कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेत संभाल॥

सुमिरन की सुधि यौं करो, जैसे नाद कुरंग।

कहैं कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तिहि संग॥

सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यौं सुई में डोर।

कहैं कबीर छूटै नही, चलै ओर की ओर॥

सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।

कबीर बिसारे आपको, होय जाय तिहि रंग॥

सुमिरन सों मन लाइये, जैसे दीप पतंग॥

प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोरै अंग॥

हम ने स्थिरचित्त योगी का वर्णन पढ़ा है। जिन स्थिरचित्त योगियों की बुद्धि का ज्ञान द्वारा उस सूक्ष्म तत्व में प्रवेश नही हुआ है उन के निर्गुण ध्यान द्वारा क्रम मुक्ति का वर्णन हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.07।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.8॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

"abhyāsa- yoga- yuktena,
cetasā nānya-gāminā..।
paramaḿ puruṣaḿ divyaḿ,
yāti pārthānucintayan"..।।

भावार्थ:

हे पृथापुत्र! जो मनुष्य बिना विचलित हुए अपनी चेतना (आत्मा) से योग में स्थित होने का अभ्यास करता है, वह निरन्तर चिन्तन करता हुआ उस दिव्य परमात्मा को ही प्राप्त होता है । (८)

Meaning:

With the mind engaged in constant practice of yoga, not diverting from it, contemplating the supreme divine person, (one) attains (him), O Paartha.

Explanation:

Now that we know that the ultimate goal is upaasana, or constant meditation on Ishvara, how do we actually go about doing it? Shri Krishna described three kinds of meditation in the upcoming shlokas.

To perform upaasana, we need the support of either name or form, since it is extremely difficult to meditate upon something that is intangible. In the following three shlokas, Shri Krishna elaborates upon the technique of meditation on form. Here, he recalls the technique that was presented to us in the sixth chapter - abhyaasa yoga. In this technique, the mind is trained to focus exclusively on one thing. If it diverts to something else, then we bring it back to our object of meditation.

So then, what is the form that we meditate upon? We can meditate upon any form that we have a closeness to. It could be Lord Rama, Krishna, Hanuman or any deity. The deity should come to our mind effortlessly. There is no compulsion to choose one over the other. But as discussed earlier, we should be clear that the deity is an indicator or pointer to Ishvara, the supreme divine person being the words used in this shloka. We should not get stuck at the level of the deity we have chosen.

The devotee can constantly think of the object of worship, the Supreme Lord, in any of His features Narayana, Krishna, Rama, etc. by chanting Hare Krishna. This practice will purify him, and at the end of his life, due to his constant chanting, he will be transferred to the kingdom of God. Yoga practice is meditation on the Supersoul within; similarly, by chanting Hare Krishna one fixes his mind always on the Supreme Lord. The mind is fickle, and therefore it is necessary to engage the mind by force to think of Krishna. One example often given is that of the caterpillar that thinks of becoming a butterfly and so is transformed into a butterfly in the same life.

For those of us who are not so familiar with these deities, we can read scriptures like the Puraanaas that have wonderful stories describing the lives and exploits of these deities. Growing up in India, our generation was fortunate to read Amar Chitra Katha comics that presented these stories in a format that appealed to us as kids. They are available all over the world now.

When one is continuously engaging in devotion, with complete surrender to God, their purified mind will gradually get fully absorbed in God-consciousness. Such souls receive the divine grace of God that liberates them from the bondage of maya. Then God bestows upon these souls His unlimited divine bliss, divine knowledge, and divine love. They become God- realized while they are still alive and live a complete life. Eventually, when they die, their soul ascends to the Divine Abode of God.

As we increase our prowess in meditation, our notion of Ishvara also grows. To help us meditate upon Ishvara in all his grandeur, Shri Krishna gives us a pointer to this type of meditation in the next shloka that describes the form of the param purusha, the supreme being.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में मन-बुद्धि युक्त योग करते हुए अपने कर्म अर्थात युद्ध करने की प्रेरणा देने के बाद यहाँ इस बात पर बल दिया गया कि मन- बुद्धि युक्त योग को प्राप्त करने के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवम ध्यान अर्थात अष्टांग योग का निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए। भगवत सम्बन्धी सजातीय वृत्तियों की आवृत्ति एवं विजातीय वृत्तियों की निवृत्ति का नाम ही अभ्यास योग है।

इस अभ्यास द्वारा चित्त विभिन्न पदार्थो या देवी देवताओं की ओर न लगा कर एक मात्र परमात्मा पर लगा देना चाहिये। यह स्मरण इतना सूक्ष्म होना चाहिए कि इष्ट के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु या देवी देवताओं का स्मरण या मन मे तरंग भी न हो।

अभ्यास में लगे हुए स्थिर चित्त द्वारा परमात्मा का निरंतर सूक्ष्म ध्यान अपने स्वाभाविक एवम वर्ण धर्म के अनुसार कर्तव्यकर्म करते हुए करना ही अनुचिंतन है।

अभ्यास में मन लगने से प्रसन्नता होती है और मन न लगने से खिन्नता होती है। यह अभ्यास तो है पर अभ्यासयोग नहीं है। अभ्यासयोग तभी होगा जब प्रसन्नता और खिन्नता - दोनों ही न हों। अगर चित्त में प्रसन्नता और खिन्नता हो भी जायँ तो भी उनको महत्त्व न दे केवल अपने लक्ष्यको ही महत्त्व दे। अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहना भी योग है।

भूखे मरने से उचित भीख मांगना है और कुछ नही करने से अच्छा कर्म करते रहना है। ऐसे ही ध्यान लगाने के सगुण उपासना उचित है यही सगुण उपासना निर्गुण उपासना में परिवर्तित होती है। निर्गुण उपासना से सविकल्प समाधि लगती है और सविकल्प समाधि निर्विकल्प समाधि लगती है। निर्विकल्प समाधि से जीव में असंग के ज्ञान की प्राप्ति होने लगती है और तत् त्वं असि अर्थात उसे ब्रह्म तत्व मैं ही हूं का ज्ञान उत्पन्न होने लगता है।

निर्गुण उपासना से निर्विकारता, असंगता, स्वप्रकाशता, नित्यता, पूर्णता, एकता आदि उदार धर्म जिन का विभिन्न शास्त्रों में वर्णन आता है, स्वत: ही उपासक को प्राप्त होने लगते है। अमृत बिंदु उपनिषद में

इसी निर्गुण उपासना के लिए निर्विकल्प समाधि को योगाभ्यास सिद्ध करने को कहा गया है। क्योंकि सगुण उपासना से निर्गुण उपासना अधिक ऊंची है।

अतः जो जप तप, तीर्थाटन, भजन कीर्तन अधिक करते है और निर्गुण उपासना का योगाभ्यास नही करते या निर्गुण उपासना आत्म तत्व के ज्ञान के नही करते, वे उन लोगो की श्रेणी में आते है जो गुड को फेंक कर हाथ को चाटते है। ज्ञान की प्राप्ति निर्गुण उपासना से ही अधिक सिद्ध होती है। जिन का मन व्याकुल रहता है या जो ममता, मोह में फसे हुए है, इन के सांख्य के योगाभ्यास द्वारा आत्मज्ञान हेतु परब्रह्म का निर्विकल्प समाधि से योग करना ही श्रेष्ठ है।

मरते समय जो भी आसक्ति, विचार चलता है, वही प्राण में रुक जाता है और इंद्रियों का व्यापार बंद हो जाता है। इसलिए प्राण उसी के अनुसार अगला जन्म तलाश कर लेते है। इसलिए निर्गुण उपासना को योग से करने से अंत काल में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान रह जाता है, जिस से जीव को ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। तापनीय उपनिषद में निष्काम निर्गुण उपासना से मुक्ति की बात कही गई है।

भगवान कहते है, हे पार्थ ! अभ्यास योगयुक्त अनन्यगामी चित्त द्वारा अर्थात् चित्तसमर्पण के आश्रयभूत मुझ एक परमात्मा में ही विजातीय प्रतीतियों के व्यवधान से रहित तुल्य प्रतीति की आवृत्ति अर्थात सजातीय वृत्तियों का आवृति का नाम अभ्यास है वह अभ्यास ही योग है ऐसे अभ्यासरूप योग से युक्त उस एक ही आलम्बन में लगा हुआ विषयान्तर में न जानेवाला जो योगी का चित्त है उस चित्त द्वारा शास्त्र और आचार्य के उपदेशानुसार चिन्तन करता हुआ योगी परम निरतिशय - दिव्य पुरुषको -जो आकाशस्थ सूर्यमण्डलमें परम पुरुष है - उसको प्राप्त होता है।

यहां माँ द्वारा उस के पुत्र है प्रेम का उदाहरण भी दे सकते कि वो समस्त कार्य करती हुई अपने पुत्र में मोह में एकचित हो कर उस का ख्याल रखती है। इसी प्रकार अभ्यास द्वारा एक चित्त हो कर एक परमात्मा का ध्यान रखते हुए जीव को अपना कर्तव्य कर्म करते रहना चाहिये। मीरा ने भगवान श्री कृष्ण के स्वरूप की सगुण उपासना प्रेम से की थी।

यथार्थ गीता में स्मरण एवम युद्ध मे युद्ध को मायावी विजातीय प्रवृति जैसे काम-क्रोध, राग-द्वेष आदि के विरुद्ध बताया है। किंतु कर्मयोगी को विजातीय प्रवृति के साथ विरुद्ध युद्ध करते हुए भी अपने कर्तव्य धर्म का पालन करना ही चाहिये। यही निष्काम भाव से कर्म है, यही अकर्ता भाव से कर्म है, यही समर्पण भाव से कर्म है, यही सृष्टि यज्ञ चक्र के नियम से कर्म है एवम यदि मन- बुद्धि योग चित भाव से कर्म है। यही कर्तव्य धर्म के पालन के अनुसार कर्म है।

व्यवहारिकता में कुछ भी प्राप्त करना हो तो परिश्रम, एकाग्रता, लक्ष्य के प्रति समर्पण आदि की आवश्यकता तो होती है किन्तु निपुणता केवल निरन्तर अभ्यास से ही प्राप्त होती है, अभ्यास से ही आप सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी, उद्योगपति, वक्ता या अन्वेषण आदि कर सकते है, वैसे ही मन का नियंत्रण, कर्म करते हुए सूक्ष्म हृदय से स्मरण अभ्यास से प्राप्त हो सकता है, इसी पर भगवान श्री कृष्ण का भी अधिक बल के है कि अंत समय मे परमात्मा का ही स्मरण हो, तो अभ्यास के साथ अपना अपना कर्तव्य धर्म का पालन करते रहना चाहिये। सब कर्मो को त्याग कर सन्यासी बन जाने से भी अंत समय मे परमात्मा का स्मरण बिना अभ्यास के सम्भव नही।

परमात्मा ही अधियज्ञ है, वह ही समस्त यज्ञ का भोक्ता है। वह ही ह्रदय में हमेशा विद्यमान रहता है। उस परमेश्वर अर्पण बुद्धि से जन्म भर निष्काम कर्म करने वाले कर्मयोगी अंत काल मे भी जिस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा का स्वरूप का स्मरण करते हुए परमात्मा को प्राप्त होता है, परमात्मा को प्राप्त होना एवम स्मरण किस प्रकार का है इसे हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।।8.08।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.9॥

कविं पुराणमनुशासितार-मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥

"kaviḿ purāṇam anuśāsitāram,
aṇor aṇīyāḿsam anusmared yaḥ.. l
sarvasya dhātāram acintya- rūpam,
āditya- varṇaḿ tamasaḥ parastāt"..।।

भावार्थ:

मनुष्य को उस परमात्मा के स्वरूप का स्मरण करना चाहिये जो कि सभी को जानने वाला है, पुरातन है, जगत का नियन्ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है, सभी का पालनकर्ता है, अकल्पनीय-स्वरूप है, सूर्य के समान प्रकाशमान है और अन्धकार से परे स्थित है। (९)

Meaning:

He who is omniscient, timeless, the commander, subtler than the subtlest, protector of all, incomprehensible, brilliant like the sun, beyond darkness, (one) contemplates (him).

Explanation:

As part of the series of shlokas that help us meditate on Ishvara's form, Shri Krishna here gives us a beautiful poetic shloka that describes Ishvara's grandeur. This is the description of the "parama purusha", the supreme divine person Ishvara that was referenced in the previous shloka. Note that this shloka has a different meter for added emphasis.

1. **Kavi:** Like a poet who knows the entirety of his creation, God is omniscient. He is the seer who knows the past, present, and future, as mentioned in verse 7.26.

2. **Purāṇam:** God is the most ancient, and nothing predates Him. He is the origin of the entire material and spiritual world, but He has not originated from anything. God is without a beginning or an end.

3. **Anuśhāsitāram:** God is the governor or the ruler. He administers His regime through the celestial gods that He has appointed or sometimes directly. He is the creator, and everything in this universe is under His control and run by His law.

4. **Aṇoraṇīyān:** Here God is said to exist in the subtlest or subatomic form. The soul is subtler than matter, but God is even subtler than the soul, as He is seated within every soul.

5. **Sarvasya Dhātā:** God is the source of sustenance. Similar to an ocean that sustains the waves and its vast marine ecology. God is the support for His entire creation.

6. **Achintya rūpa:** God exists in inconceivable forms. Our mind and intellect are material in nature, and God is divine, thus, beyond our understanding. It is only through His grace one can understand Him. He bestows His divine grace and makes our mind divine by His Yogmaya power; only then can we know Him.

7. **Āditya varṇa:** Āditya is one of the names of the sun god. Here, God is said to be dazzling like the sun.

8. **Tamasaḥ Parastāt:** Similar to the sun that eradicates darkness, God with His effulgence eliminates ignorance. On a cloudy day, the sun is not visible, but it is an optical illusion for us. The sun is where it is, unaffected by the clouds in the earth's atmosphere. Similarly, during His Leelas or pastimes, God may seem to be covered by His material energy, Maya. However, He is unaffected by it. He is beyond darkness and ignorance.

So therefore, we should try to contemplate on this form of Ishvara throughout our lives, so that we can remember this picture during our final moments.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में **परमात्मा के स्मरण** की बात को आगे बढ़ाते हुए भगवान श्री कृष्ण परमात्मा के स्वरूप का स्मरण कराते हुए कहते है। वे ब्रह्म का वर्णन प्रकृति के अनुसार जिन को हम पहचानते है, उस से तुलनात्मक स्वरूप में कहते है।

जो आकारहीन होता है, जिस में जन्म और मृत्यु का नामोनिशान तक नही होता, जो सब कुछ देखने वाला है, जो आकाश से भी पुरातन है, जो परमाणु से भी अति सूक्ष्म है, जिस के सानिध्य से समस्त जगत को चैतन्यता मिलती है, जिस के कारण यह समस्त विश्व जीवंत है, जिस के समक्ष कार्य- कारण का सम्बन्ध टिक नही है अर्थात जो कल्पनातीत है, जो अगोचर है और जो पूर्ण रूप से निर्मल किये हुए सूर्य की रश्मियों का पुंज है, वही परब्रह्म है।

आदि गुरु शंकराचार्य जी ने भी ब्रह्म के स्वरूप के बारे में कहा है।

सब उपाधियों से छूटा हुआ सत्- चित्- आनन्दरूप अद्वितीय, निर्विशेष, एकरूप, आभासरहित (प्रतिबिंबरहित), जिस को 'वह' या 'यह' नहीं कह सकते, जिस को अंगुली से नहीं चला सकते, आदि और अन्त से रहित, व्यापक, शान्त, कूटस्थ, तर्क और ज्ञान का अविषय निर्गुण ब्रह्म ही शेष रहता है ।।

देखे हुए को देखना आदि, भ्रान्ति से उत्पन्न हुए विकल्पों के द्वारा स्वप्न और जागरण- दोनों में भेद देखने में नहीं आता है। इसलिए स्वप्न और जागरण दोनों ही मिथ्या हैं । स्वप्न और जाग्रत- दोनों ही अवस्थायें अविद्या का कार्य हैं। दोनों में दृष्टा, दर्शन, दृश्य आदि की कल्पना ही मिथ्या है। सबके द्वारा ही सुषुप्तिकाल में स्वप्न और जाग्रत- दोनों ही अवस्थाओं के अभाव का अनुभव किया जाता है। दोनों में कुछ भी भेद नहीं होता, इसलिए स्वप्न और जाग्रत - दोनों ही मिथ्या हैं ।।

निद्रा के समय-- पुत्र, शरीर के धर्म, सुख-दुख आदि,जगत और जीव और ईश्वर का भेद भी जो प्रतीत होता है; उसका किसी के भी द्वारा, कहीं भी सिद्ध करना अशक्य होता है । माया से कल्पित देश, काल, जगत और ईश्वर आदि का भ्रम भी वैसे ही मिथ्या है, फिर जीव और ईश्वर में कैसा भेद ? अन्य कारण से कौनसा पदार्थ सत्य हो सकता है ?

जीव और ब्रह्म की उपाधि , विशिष्टता, उसके धर्म से युक्त होना, विचित्रता, यह सब अज्ञान की कल्पना है; इसलिए स्वप्न में देखे हुए पदार्थ के समान यह सब मिथ्या ही है; जाग्रत अवस्था में भी कदापि सत्य नहीं है।।

जिस अवस्था में अन्य को नहीं देखता है; यह श्रुति भ्रम से ब्रह्म में कल्पना किए हुए के (आरोपित वस्तु के) मिथ्यापन- ज्ञान बताने के लिए, द्वैत का निषेध करती है । क्योंकि श्रुति द्वैत का निषेध करती है; इसलिए सदैव अद्वितीय, उपाधिरहित, शुद्ध, निरन्तर आनन्दमूर्ति, इच्छाशून्य, किसी का आश्रय न रखनेवाला, स्वप्रतिष्ठ और केवलमात्र एक ही ब्रह्म है।।

भूत, भविष्य और वर्तमान - तीनों काल में भ्रान्ति से प्रतीत होनेवाला सजातीय, विजातीय और स्वगत रूप कोई भी भेद वास्तव में ब्रह्म में नहीं है।।

ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, उसमें गुणों का अनुभव नहीं है, उसमें वाणी का व्यापार नहीं है और मन का व्यापार भी नहीं है। वह केवल शुद्ध, अत्यंत शान्त, व्यापक, अनादि काल से विद्यमान, अद्वितीय है और वह आनन्दमात्र ही प्रकाशित होता है । यह जो जरा- मरण- रहित, सत्- चित्- आनन्दस्वरूप परम सत्यस्वरूप वस्तु (ब्रह्म) है, यह नित्य है।

भगवान श्री कृष्ण जी भी कुछ इसी भाव में कहते है

सम्पूर्ण प्राणियों को और उनके सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों को जानने वाले होने से उन परमात्मा का नाम **कवि अर्थात् सर्वज्ञ** है। भूत, भविष्य और वर्तमान की स्थूल, सूक्ष्म, और कारण किसी भी जगत की ऐसी कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष बात नही जिसे वह यथार्थ रूप में न जानता हो। कवि का अर्थ यहाँ कविता लिखने वाले कवि न हो कर सर्वज्ञ है और पुराण का अर्थ समय से परे है।

वे परमात्मा सब के **आदि होने से पुराण कहे जाते हैं।** उस से पहले न कोई था, न हुआ है और न ही उस का कोई कारण है अपितु वह ही सब का कारण है इसलिये सनातन है।

हम देखते हैं तो नेत्रों से देखते हैं। नेत्रों के ऊपर मन शासन करता है मन के ऊपर बुद्धि और बुद्धि के ऊपर अहम् शासन करता है तथा अहम् के ऊपर भी जो शासन करता है जो सब का आश्रय प्रकाशक और प्रेरक है वह (परमात्मा) अनुशासिता है। दूसरा भाव यह है कि जीवों का कर्म करने का जैसा जैसा स्वभाव बना है उस के अनुसार ही परमात्मा (वेद शास्त्र गुरु सन्त आदि के द्वारा) कर्तव्य कर्म करने की आज्ञा देते हैं और मनुष्यों के पुराने पाप पुण्य रूप,कर्मों के अनुसार अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति भेज कर उन मनुष्यों को शुद्ध निर्मल बनाते हैं। इस प्रकार मनुष्यों के लिये कर्तव्य अकर्तव्य का विधान करने वाले और मनुष्यों के पाप- पुण्य रूप पुराने कर्मों का (फल देकर) नाश करनेवाले होने से परमात्मा अनुशासिता है। वह सब का स्वामी है, सर्व शक्तिमान है, सर्वान्तिर्यामी है और सब का नियंत्रण कर्ता है।

अत्यंत शक्तिशाली हो कर भी परमात्मा अत्यंत सूक्ष्म ही है। परमाणु से भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं। जितने भी सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व है यह उन सब से सूक्ष्म है। इसलिये सब मे व्याप्त है। तात्पर्य है कि परमात्मा मनबुद्धि के विषय नहीं हैं मनबुद्धि आदि उन को पकड़ नहीं पाते। मनबुद्धि तो प्रकृति का कार्य होने से प्रकृति को भी पकड़ नहीं पाते फिर परमात्मा तो उस प्रकृति से भी अत्यन्त परे हैं अतः वे परमात्मा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं अर्थात् सूक्ष्मता की अन्तिम सीमा हैं। इसलिये सूक्ष्मदर्शी पुरुषों की सूक्ष्म से सूक्ष्म बुद्धि ही उस का अनुभव मात्र करती है।

अत्यंत सूक्ष्म होने बाद भी परमात्मा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों को धारण करनेवाले हैं उन का पोषण करनेवाले हैं।इतना सूक्ष्म होने पर भी समस्त विश्व- ब्रह्मांड का आधार वही है। उन सभी को परमात्मा से ही सत्तास्फूर्ति मिलती है। अतः वे परमात्मा सब का धारण पोषण करने वाले कहे जाते हैं।

परमात्मा अज्ञान से अत्यन्त परे हैं अज्ञान से सर्वथा रहित हैं। उन में लेशमात्र भी अज्ञान नहीं है प्रत्युत वे अज्ञान के भी प्रकाशक हैं। मन से उन का यथार्थ स्वरूप का चिंतन संभव नही। मन और बुद्धि में जो चिंतन और विचार करने की शक्ति आती है वो उस से ही आती है।

परमात्मा का वर्ण सूर्य के समान है अर्थात् वे सूर्य के समान सब को मन बुद्धि आदि को प्रकाशित करनेवाले हैं। उन्हीं से सब को प्रकाश मिलता है। सभी मे शक्ति का संचार उन्ही से होता है। वो ही सब की ओर देखता है उस को कोई नही देख पाता। इसलिये अचिंत्यस्वरूप है। स्वयं प्रकाशवान होने से अपनी अखंड ज्ञानमयी दिव्य ज्योति से सदा सर्वदा सब को प्रकाश प्रकाशित करता है। उस के अंदर अज्ञान या अंधकार की कल्पना तक भी नही की जा सकती।

मन को आत्मा के चिन्तन में एकाग्र करने के फलस्वरूप साधक भक्त के मन में अध्यात्म संस्कार दृढ़ हो जाते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे साधक को अन्तकाल में भी आत्मस्वरूप का स्मरण होगा ।अविद्याजनित विपरीत धारणाओं तथा तज्जनित गर्व मद आदि विकारों का समूल नाश तभी संभव हो

सकता है जब साधक ध्यानाभ्यास के द्वारा देहादि जड़ उपाधियों के साथ अपने मिथ्या तादात्म्य का सर्वथा परित्याग कर दे। आत्मा का ध्यान परम दिव्य पुरुष के रूप में करना चाहिए। परन्तु इन शब्दों का पूर्ण अर्थ जाने बिना उस पर ध्यान करना संभव नहीं हो सकता क्योंकि उस दशा में वे केवल अर्थहीन ध्वनि या शब्द मात्र होंगे।

प्राणिमात्र उन परमात्मा की जानकारी में हैं उन की जानकारी के बाहर कुछ है ही नहीं अर्थात् उन परमात्माको सब का स्मरण है अब उस स्मरण के बाद मनुष्य उन परमात्मा को याद कर ले। वह परमात्मतत्त्व चिन्तन में नहीं आता - अतः ऊपर जो लक्षण या परमात्मा का स्वरूप बताया गया है उस का स्मरण मात्र ही चिंतन है। उस स्मरण मात्र करने अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो जाता है।

परमात्मा के स्वरूप कार्य का यह वर्णन स्मरण करने के लिये किया है कि उस परम पुरुष को जिसे कोई देख नहीं सकता, सुन नही सकता उस को स्मरण किस प्रकार करे। जिस से वो हमारे मन- बुद्धि के चेतन्य को जाग्रत करे और अपनी कृपा से हमारे स्मरण में आये।

श्लोक 9 से 11 उपनिषदों से परब्रह्म के स्वरूप का वर्णन है। यह श्वेताश्वतर और कठौनिषद से लिये हुए वर्णन के समान है। निर्गुणकार परमेश्वर परमात्मा का सगुणाकार स्वरूप वह नही है तो हम जीव के रूप स्त्री या पुरुष के रूप में देखते है। अतः हमारी दृष्टि में परमात्मा के एक स्वरूप की अत्यंत सुंदर रचना इस श्लोक के माध्यम से की गई है। परमात्मा का वर्णन करना और प्रत्यक्ष अनुभव करना दोनो में अंतर है। जो प्रत्यक्ष में अनुभव होता है, उसे शब्दो के माध्यम से अनुभव करवा पाना पूर्णतः संभव नही, खास तौर पर उन के सामने जो परमात्मा को पुरुष के समान समझते है।

आधुनिक विज्ञान भी भारत के परमात्मा तत्व को स्वीकार कर बिग बैंग सिंद्धान्त द्वारा ब्रह्मांड के निर्माण को स्वीकार करता है। परम तत्व को हिंग्स बोसन अर्थात गॉड पार्टिकल के नाम से अनुसंधान किया जा रहा है। जिस में आठ देशों के मध्य बनी विशाल प्रयोग शाला में ब्रह्मांड के निर्माण के प्रयोग किये जा रहे है।

परमात्मा का चिंतन अर्थात स्मरण मन- बुद्धि से योगयुक्त योगी निरंतर किस प्रकार करता है यह अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.09।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.10॥

प्रयाण काले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्- स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

"prayāṇa-kāle manasācalena
bhaktyā yukto yoga-balena caiva
bhruvor madhye prāṇam āveśya samyak
sa taḿ paraḿ puruṣam upaiti divyam"

भावार्थ:

जो मनुष्य मृत्यु के समय अचल मन से भक्ति मे लगा हुआ, योग-शक्ति के द्वारा प्राण को दोनों भौंहौं के मध्य में पूर्ण रूप से स्थापित कर लेता है, वह निश्चित रूप से परमात्मा के उस परम-धाम को ही प्राप्त होता है। (१०)

Meaning:

At the time of departure, endowed with devotion, an unwavering mind, as well as the power of yoga, fully establishing the praanaas in the centre of the eyebrows, he attains that supreme divine person.

Explanation:

The puraanaas contain several stories describing how people endowed with yogic powers could control their life force or their praana and force it out of the body. At the end of the Mahabharata, many people including Yudhishthira and Draupadi left their bodies using yogic powers. If we interpret this shloka literally, it describes how one can remember Ishvara’s form while voluntarily starting the process of departing the body.

We, of course, do not know anything about such techniques, nor do we wish to pursue it. So therefore, let us examine the symbolic meaning of this shloka. “Prayaana kale” literally means the time of departure or death. Symbolically, it signifies the death of the ego, or the end of our notion of finitude. Therefore, when we rid ourselves of selfish desires, likes and dislikes, and in doing so slay the ego, we automatically develop firm devotion or bhakti towards Ishvara.

The Vedic scriptures offer various spiritual paths so that based on the level of sadhana that we may have performed in our past lives, we may choose a suitable path. However, they simultaneously stress on bhakti or devotion to God that ties together all these paths in one common thread.

As our devotion increases, our mind’s tendency to jump from one thought to the other slows down, settling into the one thought of Ishvara. We can then meditate on the form of Ishvara as the supreme, divine person or parama purusha. All the energy that would normally have been wasted in selfish thinking and action is available to us now. We can channel this reservoir of energy towards meditation.

So therefore, if we use these instructions to develop the daily habit of meditating upon Ishvara, we will naturally and easily remember Ishvara when it is time for us to leave this world. The key thing, of course, is not to forcibly practice meditation, but to gradually ease into it as our level of devotion to Ishvara increases.

The Bhagavad Gita beautifully embraces varieties of sadhanas to cater to a large populace belonging to diverse backgrounds, upbringing, and natures. Bhakti involves focusing the mind upon God, in His various divine Forms, Qualities, Pastimes, etc. In its pure form, bhakti is called śhuddha bhakti. However, when undertaken along with ashtanga yoga, it is termed yog- miśhra bhakti or a fusion of devotion and ashtanga yoga sadhana.

Shree Krishna has described yog- miśhra bhakti from verse ten to thirteen. In the practice of ashtanga yoga, the life force or prān shakti is channelized through suṣhumṇā nādi of the spinal column and then raised toward the third eye region between the eyebrows. In this verse, He says that at the time of death, one who performs this with great devotion and complete focus on the Divine Lord will definitely achieve Him.

So at the end praṇa means this very life principle, the pañcha prāṇaḥ; he withdraws from every organ of the body, and he has to bring the praṇa to hṛdayam; and from the hṛdayam he has to direct the praṇa is directed through a special channel called suṣumnā nādi and the channel is supposed to open on the top of the head and that opening is called Brahma randram; Brahma randram means passage to brahma lōkā.

With this shloka, Shri Krishna concludes the topic of meditation on Ishvara's form. The topic of meditation on Ishvara's name is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व में हम ने योग के विषय में पढ़ा, अब 9-11 श्लोकों में उपनिषदों से लिये गये शब्द है जिस में अर्जुन के अंतिम प्रश्न का उत्तर निहित है कि अंतकाल में किस प्रकार देह त्याग कर के परमात्मा को कैसे प्राप्त करे। पूर्व श्लोक में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन उस को स्मरण करने के भगवान श्री कृष्ण द्वारा दिया गया। अब मन- बुद्धि योग द्वारा देह त्याग को पढ़ते है।

जीव के प्रकृति स्वरूप अर्थात जीवात्मा और परब्रह्म में अंतर अहम द्वारा लिया गया, अज्ञान का है। जीव स्वयं को अज्ञान में अहम से कर्ता और भोक्ता मान लेता है। क्योंकि देह नश्वर है, इसलिये इस को नष्ट होना ही है, इसलिये प्रयाण काल मे यह अज्ञान दूर नही होता तो वह अपने संचित कर्मो एवम प्रारब्ध कर्मो के आधार पर प्राण छोड़ते समय जो भी कामना करता है, वही उस के अगले जन्म का सूत्र होता है। किंतु जिन का अज्ञान ध्यान एवम अभ्यास से मिट गया है जो निष्काम है, वह क्या करते हुए प्राण छोड़ता है, इस का वर्णन करते हुए भगवान कहते है।

अभ्यास योग से योगाभ्यास से उत्पन्न जो यथायोग्य प्राण संचालन और प्राण निरोध का सामर्थ्य है वो योगबल है। दोनों भृकुटि के मध्य आज्ञाचक्र है। यह आज्ञाचक्र द्विदल है, इस मे त्रिकोण योनि है जिस में अग्नि, सूर्य एवम चंद्र एकत्र होते है। इस आज्ञा चक्र में प्राणों का निरोध करना साधन सापेक्ष है। इस आज्ञाचक्र के समीप सप्त कोश है जिन्हें इंदु, बोधिनी, नाद, अर्धचंद्रिका, महानाद, (सोमसूर्यअग्निरूपणी) कला एवम उन्मनि कहते है। उन्मनि में जाने से जीव परम् पुरुष को प्राप्त होता है। जब मन अचल हो या स्थिर हो जाता है तो उसे नान्यगामी कहते है। पूर्व के अध्याय में ध्यान योग में हम ने इस सब का अभ्यास पढ़ा है, अतः इस स्थिति को प्राप्त करने के अभ्यास अत्यंत आवश्यक है।

पूर्वश्लोक में हम ने पढ़ा है 'अंत मति सो गति' अर्थात अंत समय जो मन मे रहेगा वो ही अगले जन्म का कारण होगा। ध्यान योगी का मूल अज्ञान कि वो प्रकृति के बंधन में ज्ञान द्वारा दग्ध नही होता इसलिये भगवान ने यहाँ ध्यान योगी के लिये प्रयाण काल ने अचल मन से ध्येयाकार वृति की विधि कथन की और भक्ति एवम योग उभय बल का प्रयोग बतलाया है। योग का फल प्राण निरोध है, प्राण निरोध से मन का निरोध होता है। भक्ति का फल प्रेम द्वारा ध्येय रूप में मन की संलग्नता है। इसलिये योगद्वारा अन्य ओर से मन का तोड़ना तथा भक्ति द्वारा ध्येय रूप में जोड़ना फल होने से दोनों में सफलता है।

इस प्रकार हृदय कमल में चित को स्थिर कर के, फिर ऊपर की ओर जाने वाली नाड़ी द्वारा भृकुटि के मध्य में प्राणों को स्थापन कर के,(प्राण-अपान को भली प्रकार सम कर के, न अंदर से उद्वेग पैदा हो न बाह्य संकल्प कोई लेने वाला हो, सत- रज- तम भली प्रकार से शांत हो, सूरत इष्ट में स्थित हो, उस काल मे) भली प्रकार सावधान हुआ वह योगी परमात्मा के कवि- पुराण इत्यादि स्वरूप का स्मरण करता हुआ दिव्य परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है। जो इस प्रकार की शान्त अवस्था मे देह त्याग कर देता है, वही पूर्ण परब्रह्म की अवस्था होती है। जो मेरा स्वयंसिद्ध स्वरूप है वो वही तेजस्वरूप हो कर रहता है।

इसलिये भगवान का कथन है तू निरंतर मुझे स्मरण कर। उस तत्त्व में प्रियता (आकर्षण) होने से ही मन अचल होता है। यहाँ भक्ति शब्द से सामान्य संसारी जनों की व्यापारिक पद्धति की भक्ति नहीं समझनी चाहिए। ईश्वर के लिए वह परम प्रेम जिसमें न किसी प्रकार की कामना है और न अपेक्षा जो प्रेम केवल प्रेम के लिए ही है भक्ति कहलाता है। प्रेम का अर्थ है अपने प्रियतम से वह तादात्म्य जिसमें प्रियतम के सुख और दुःख अपने स्वयं के ही सुखदुःख अनुभव होते हैं। संक्षेप में प्रेमी और प्रेमिका भक्त और ईश्वर परस्पर एकरूप हो जाते हैं। वृंदावन में गोपियों के कृष्ण के प्रति एवम राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम भक्ति की इस श्रेणी में आता है। इसलिए श्री शंकराचार्य भक्ति का लक्षण बताते हैं स्वस्वरूपानुसन्धान भक्ति कहलाती है अर्थात् जीव का अपने सत्यस्वरूप के साथ एकत्व भक्ति है।

गीता का यह श्लोक भक्ति के महत्व को अष्टांग योग से जोड़ कर बता रहा है, ज्ञानी सन्यास योग में स्वयं को निर्गुणाकार परब्रह्म के स्तर तक ले जाने का अभ्यास करता है और भक्ति में भक्त स्वयं को सगुणाकार परमात्मा से जोड़ कर अपने अस्तित्व को विलीन करता है। इसलिए यह श्लोक योग मिश्रित भक्ति की ओर परमात्मा द्वारा मुक्ति के मार्ग को प्रदर्शित करता है।

प्रयाणकाल से अभिप्राय अहंकार की मृत्यु के क्षण से भी समझ सकते है ।आन्तरिक शान्ति के समय जब अहंकार की मृत्यु होती है तब साधक आत्मस्वरूप में स्थित होकर परम पुरुष से एकत्व भाव मे स्थित हो जाता है । ध्यान साधना के द्वारा जब सजग रह कर शरीर मन और बुद्धि से हुए तादात्म्य को पूर्णतया निवृत्त किया जाता है तब साधक आन्तरिक शान्ति के स्थिर क्षण का अनुभव करता है। उस समय निश्चल मन से इस श्लोक में उपदिष्ट साधना का उसे पालन करना चाहिए। जिस क्षण जीव का अहम और भोक्तभाव का त्याग हो जाता है और उसे अपने और प्रकृति के संबंध का ज्ञान हो जाता है वही उस का प्रयाण काल भी होता है क्योंकि फिर जो शरीर प्रकृति की क्रियाओं में लिप्त है भी निष्काम और निर्लिप्त है। जो प्राण प्रकृति के अनुसार शरीर का संचालन करता है वह बुद्धि से नियंत्रित हो कर कार्य करता है। इसलिए योगी को प्रकृति नियंत्रित नहीं करती।

गीता में विभिन्न मीमांसा में एक अर्थ इस श्लोक में ईश्वर में परानुरक्ति को भक्ति कहते हुए, कार्य कुशलता और समता को योग कहा है। जिस में ऐश्वर्य कामी भक्त अचल मन से हृदय से दोनो भ्रुवों के मध्य ध्यान को केंद्रित करते हुए भक्ति भाव से परमात्मा की उपासना करता है और परमात्मा के समान ईश्वर्य को प्राप्त करता है। यह अर्थ क्योंकि कामना रखने वाले भक्त के संदर्भ में कही गई है, जिन्हें स्वर्ग आदि लोक की प्राप्ति होती है।

अगले के श्लोक में निर्गुण निराकार परब्रह्म की प्राप्ति के उपाय का उपक्रम पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.10।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.11॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

"yad akṣaraḿ veda-vido vadanti
viśanti yad yatayo vīta-rāgāḥ
yad icchanto brahmacaryaḿ caranti
tat te padaḿ sańgraheṇa pravakṣye"

भावार्थ:

वेदों के ज्ञाता जिसे अविनाशी कहते है तथा बड़े-बड़े मुनि-सन्यासी जिसमें प्रवेश पाते है, उस परम-पद को पाने की इच्छा से जो मनुष्य ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं, उस विधि को तुझे संक्षेप में बतलाता हूँ। (११)

Meaning:

That which is declared imperishable by the knowers of the Vedas, that which dispassionate sages enter, that whose desire leads them to engage in the study of brahman; for you, I shall speak of that goal, in summary.

Explanation:

Having spoken of the technique of meditating upon Ishvara's form, Shri Krishna now begins the topic of meditating upon Ishvara's name. This shloka is written in the style of the Upanishads, and just like the previous shloka, is in a different meter.

Before the actual technique of meditation is described, Shri Krishna highlights the qualifications of the seeker who is about to perform this meditation. He should be free of selfish desires, likes and dislikes, indicated by the word "veetaraagaahaa". We have already encountered this word under the topic of karma yoga. Strong passions or dislikes become obstacles in meditation as they push the mind to jump from one thought to the other. Only one who has managed to control the mind can perform such meditation.

The seeker should also possess a strong desire to inquire into the knowledge of the eternal essence, indicated by the word "brahmachaari". The typical meaning of this word, celibacy, is not used here. It is used to indicate one who "moves around" or is preoccupied with the study of brahman or the eternal essence. Most of us, however, are preoccupied with actions. We are "karmachaaris". Preoccupation with action will also become an obstacle in meditation, as we have already seen in the sixth chapter.

Shree Krishna mentions in this verse the word sangraheṇa, which means "in brief." He says that this path is very difficult to follow and not suitable for everyone. Therefore, He will not elaborate much and briefly describe this path of yog-miśhrā bhakti; that leads to attaining the formless aspect of God. It demands living a life of rigid continence and perform severe austerities. Renouncing worldly desires and practicing brahmacharya, a vow of celibacy. As was previously detailed in verse 6.14, the practice of celibacy conserves a person's physical energy. This energy, when channelized through sadhana, gets transformed into spiritual energy. It also enhances the intellect and memory power of the sādhaks (spiritual aspirants) and helps them comprehend the spiritual subjects better.

Endowed with these qualifications, the seeker is ready to meditate upon that which is considered as the ultimate goal: the imperishable Ishvara or "aksharam". What is the process by which one can perform this meditation? This is taken up in the next two shlokas.

।। हिंदी समीक्षा ।।

भगवान द्वारा अर्जुन के सातवें प्रश्न का उत्तर देते हुए पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान देने के अपने वचन को आगे बढ़ाते हुए भगवान श्री कृष्ण कहते है।

अब मैं उस पद अक्षर अर्थात **ऊँकार** के विषय मे संक्षेप में बताता हूँ। यह पद समस्त वेदों को जानने वाले, अविरत साधना करने वाले और अंत मे उसे प्राप्त करने वाले ज्ञानी महात्मा वेदविद लोग जिस को अक्षर निर्गुणनिराकार कहते हैं जिस का कभी नाश नहीं होता जो सदासर्वदा एकरूप एकरस अविनाशी रहता है और जिस को इसी अध्याय के तीसरे श्लोक में अक्षरं ब्रह्म परमम् कहा गया है उसी निर्गुणनिराकार तत्त्व का यहाँ अक्षर नाम से वर्णन हुआ है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि गीता में प्रणव अक्षर के लिये ॐ शब्द का प्रयोग नही किया किन्तु वेद एवं उपनिषद में प्रणव अक्षर ॐ को ही माना गया है। हो सकता है प्रणव अक्षर भी वर्णमाला का अक्षर होने से परमात्मा ने अविनाशी नही भी माना हो, और उन के मन मे कुछ और अर्थ हो, किन्तु उपनिषद एवम वेदों को आधार मानते हुए हम इसे ॐ ही मानते हुए आगे बढ़ते है।

वीतरागी योगी पुरुष अभेद भाव से जिस में प्रवेश कर के पूर्णब्रह्म को प्राप्त होते है और जिस को प्राप्त करने के लिये योगी पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

पहले भी बताया गया था कि ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ ब्रह्म में या ब्रह्म के मार्ग में संचरण करना है। ब्रह्मचर्य का प्रधान तत्व बिंदु का सरंक्षण एवम संशोधन। अपने वीर्य को उर्धगामी रखना ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचर्य है एवम मन, वचन एवम कर्म से मैथुन का त्याग निम्न स्तर का ब्रह्मचर्य है।

ध्यान साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए मन की योग्यता अत्यावश्यक होती है। इस योग्यता के सम्पादन के लिए प्रायः सभी उपनिषदों में प्रणवोपासना(ओंकारोपासना) का अनेक स्थानों पर उपदेश दिया गया है। पौराणिक युग से इस उपासना का स्थान श्रद्धा भक्ति पूर्वक किये जाने वाले ईश्वर के साकार रूप या अवतारों के ध्यान पूजा आदि ने ले लिया है। इस प्रकार के ध्यान का प्रयोजन और उपयोगिता वही है जो वैदिक उपासनाओं की है।

अचल चित्त और ह्रदय से भक्ति भाव होने पर जो निर्विचार की निर्मलता में अध्यात्म की निर्मलता आने लगती है। यही अध्यात्म (प्रज्ञा) की निर्मलता में उसे प्रकृति पर्यंत समस्त पदार्थ शीशे की तरह साफ दिखने लगते है, इस प्रज्ञा को ऋतम्भरा प्रज्ञा भी कहते है, क्योंकि यह सत्य को धारण करती है। इस मे कोई भी भ्रांति नही रहती।

जो प्रज्ञा आगम और अनुमान पर आधारित होती है, वह सत्य प्रज्ञा नही कही जा सकती क्योंकि यह किसी अन्य के अनुभव और ज्ञान पर आधारित होती है। अतः ऋतम्भरा प्रज्ञा की स्थिति अचल मन और

ह्रदय से परमात्मा के स्मरण से प्राप्त होगी। इस के जिस ब्रह्मचर्य का पालन करना है, वह निष्काम भाव और रागद्वेष से मुक्त हो कर कर्तव्य धर्म के पालन करने से ही प्राप्त होगा।

यहाँ साधक को अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों की सूचनाओं और आवश्यक सावधानियों का निर्देश दिया गया है जिससे उसकी आध्यात्मिक तीर्थयात्रा अधिक सरल और आनन्दप्रद हो सके। साधारणतः जिन विघ्नों की शिकायत साधक करते हैं वे सब विघ्न अनात्म उपाधियों से हुए तादात्म्य के कारण ही आते हैं। इन उपाधियों के तादात्म्य से मन को परावृत्त करने में वह स्वयं को असमर्थ पाता है।

आत्मोन्नति के शास्त्र के रूप में वेदान्त के लिए आवश्यक है कि यह साधक को ध्यान की विधि बताने के साथ साथ सम्भावित विघ्नों का भी संकेत देकर उनसे सुरक्षित रहने के उपायों का भी वर्णन करे। यदि साधक को इनका सम्पूर्ण ज्ञान हो तो शीघ्र ही वह अपनी सुरक्षा कर सकता है। यह श्लोक यह इंगित करता है कि आत्मसंयम और वैराग्य के द्वारा किस प्रकार इस मार्ग पर सुखपूर्वक अग्रसर हुआ जा सकता है।

संसार मे रहने वाले हम जैसे लोगो के लिये यह कुछ अव्यवहारिक एवम सन्यासी धर्म के जैसा ज्ञान हो सकता है किंतु वास्तव में जीव को स्वयं का पूर्ण ज्ञान होने से इस संसार मे कर्मयोगी बन कर अपने जीने का मकसद मिल सकता है। स्वेच्छा से असहाय, गरीब एवम कष्ट में पड़े लोगो की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करदेने वाला भले ही परिवार, धन, पद या सम्मान को प्राप्त न करता हो किन्तु उस का आत्मबल वीतरागी की भांति सांसारिक कार्यो में दिनरात जुटे लोगो से अधिक होता है। बिना इस ज्ञान के अंत समय मोक्ष प्राप्त करना दुष्कर ही है।

हर व्यक्ति अपने अंदर कुछ न कुछ कमी महसूस करता ही रहता है किंतु जिस के पा लेने से कुछ भी कमी न रहे एवम जीवन की ढलान की अवस्था मे उसे यह कमी कुछ ज्यादा महसूस होती है। कभी कभी अपने होने का उद्देश्य या कारण भी जानने की इच्छा प्रबल होती है। कभी कभी तो यह भी लगता है कि पता नही क्या करने आये थे और क्या कर रहे है। इसलिये यह ज्ञान पूर्ण ब्रह्मतत्व आत्मबल को पूर्णता के साथ कर्मयोग में सही दिशा में जीने के आज भी सांसारिक जीवन के लिये आवश्यक है।

अतः जिस परब्रह्म के ज्ञान विषय में हम आगे पढ़ने जा रहे, वह समस्त कामना और आसक्ति को त्यागने वाला वीतरागी एवम ब्रह्मचर्य के तप से तपा हुआ सन्यासी अक्षर ब्रह्म के नाम से जानते है, अर्थात सन्यास मार्ग में परब्रह्म के ज्ञान को कर्मयोगी द्वारा किस प्रकार से जाना जा सकता है, जिस से युद्ध भूमि में खड़े अर्जुन को सन्यास मार्ग ही श्रेष्ठ है, इस भ्रम का भी निवारण हो जाए।

उस निर्गुणनिराकार तत्त्व की प्राप्ति की फल सहित विधि हम आगे पढ़ते हैं।

।।हरि ॐ तत सत।।08.11।।

।। ॐ ।। गीता - विशेष 8. 11 ।।

तस्य वाचकः प्रणवः उस ईश्वर का वाचक प्रणव 'ॐ' है।गीता में सगुण उपासना के लिये ब्रह्म को प्रणव अक्षर से व्यक्त किया है। सगुणाकार की उपासना से निर्गुणकार परब्रह्म को ओर बढ़ना, अध्याय 8 के श्लोक 9 से 11 तक मे बताया है। प्रणव अक्षर की उपासना सगुण और निर्गुण दोनो प्रकार की है। सगुण ॐ प्रणव की उपासना उसे तत्वज्ञानी होने का ज्ञान देती है और जीव तत्वज्ञानी होने पर भी अपने तत्वज्ञानी आभास से परमात्मा का साक्षी नही होता, अतः वह ब्रह्म लोक में जा कर अपने तत्वज्ञान के आभास को भी विलीन करते हुए परमात्मा के साक्षी भाव को प्राप्त करता है।

ज्ञान का होना और ज्ञानी होने में अंतर द्वैत और अद्वैत भाव के अंतर का प्रश्न है। ब्रह्म का साक्ष्य यदि ज्ञान से हो तो ज्ञान ब्रह्म तत्व से श्रेष्ठ होगा, किंतु जिस के साक्ष्य होने से ज्ञान अर्थात ज्ञान तत्व का भी आश्रय भी न रहे, वही तत्व ज्ञान श्रेष्ठ है, इसलिए सगुण उपासना निर्गुण उपासना में परिवर्तित होती है और निर्गुण उपासना तत्वज्ञान में परिवर्तित होता होता है, तत्वज्ञान से ब्रह्मत्व साक्षी होने में परिवर्तित हो जाता है। यही ब्रह्म तत्व ॐ निर्गुण उपासना है।

ओ३म् (ॐ) या ओंकार का नामान्तर प्रणव है। यह ईश्वर का वाचक है। ईश्वर के साथ ओंकार का वाच्य-वाचक- भाव सम्बन्ध नित्य है, सांकेतिक नहीं। संकेत नित्य या स्वाभाविक सम्बन्ध को प्रकट करता है। सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम ओंकाररूपी प्रणव का ही स्फुरण होता है। तदनन्तर सात करोड़ मन्त्रों का आविर्भाव होता है। इन मन्त्रों के वाच्य आत्मा के देवता रूप में प्रसिद्ध हैं। ये देवता माया के ऊपर विद्यमान रह कर मायिक सृष्टि का नियन्त्रण करते हैं। इन में से आधे शुद्ध मायाजगत् में कार्य करते हैं और शेष आधे अशुद्ध या मलिन मायिक जगत् में। इस एक शब्द को ब्रह्माण्ड का सार माना जाता है।

अक्षर का अर्थ जिस का कभी क्षरण न हो। ऐसे तीन अक्षरों— अ उ और म से मिलकर बना है ॐ। माना जाता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से सदा ॐ की ध्वनी निसृत होती रहती है। हमारी और आपके हर श्वास से ॐ की ही ध्वनि निकलती है। यही हमारे-आपके श्वास की गति को नियंत्रित करता है। माना गया है कि अत्यन्त पवित्र और शक्तिशाली है ॐ। किसी भी मंत्र से पहले यदि ॐ जोड़ दिया जाए तो वह पूर्णतया शुद्ध और शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। किसी देवी-देवता, ग्रह या ईश्वर के मंत्रों के पहले ॐ लगाना आवश्यक होता है, जैसे, श्रीराम का मंत्र — ॐ रामाय नमः, विष्णु का मंत्र — ॐ विष्णवे नमः, शिव का मंत्र — ॐ नमः शिवाय, प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि ॐ से रहित कोई मंत्र फलदायी नहीं होता, चाहे उसका कितना भी जाप हो। मंत्र के रूप में मात्र ॐ भी पर्याप्त है। माना जाता है कि एक बार ॐ का जाप हज़ार बार किसी मंत्र के जाप से महत्वपूर्ण है।

ॐ का दूसरा नाम प्रणव (परमेश्वर) है। "तस्य वाचकः प्रणवः" अर्थात् उस परमेश्वर का वाचक प्रणव है। इस तरह प्रणव अथवा ॐ एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। ॐ अक्षर है इसका क्षरण अथवा विनाश नहीं होता।

दूसरे अर्थों में प्रणव को 'प्र' यानी यानी प्रकृति से बने संसार रूपी सागर को पार कराने वाली 'ण' यानी नाव बताया गया है। इसी तरह ऋषि-मुनियों की दृष्टि से 'प्र' अर्थात प्रकर्षेण, 'ण' अर्थात नयेत् और 'व:' अर्थात युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणव: बताया गया है। जिसका सरल शब्दों में मतलब है हर भक्त को शक्ति देकर जनम-मरण के बंधन से मुक्त करने वाला होने से यह प्रणव: है।

छान्दोग्योपनिषद् में ऋषियों ने गाया है -

ॐ इत्येतत् अक्षरः (अर्थात् ॐ अविनाशी, अव्यय एवं क्षरण रहित है।)

ॐ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का प्रदायक है। मात्र ॐ का जप कर कई साधकों ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ली। कोशीतकी ऋषि निस्संतान थे, संतान प्राप्ति के लिए उन्होंने सूर्य का ध्यान कर ॐ का जाप किया तो उन्हे पुत्र प्राप्ति हो गई।

गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में उल्लेख है कि जो "कुश" के आसन पर पूर्व की ओर मुख कर एक हज़ार बार ॐ रूपी मंत्र का जाप करता है, उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

सिद्धयन्ति अस्य अर्थाः सर्वकर्माणि च श्रीमद्भागवत् में ॐ के महत्व को कई बार रेखांकित किया गया है। इसके आठवें अध्याय में उल्लेख मिलता है कि जो ॐ अक्षर रूपी ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह परम गति प्राप्त करता है।

ॐ अर्थात् ओउम् तीन अक्षरों से बना है, जो सर्व विदित है। अ उ म्। "अ" का अर्थ है आर्विभाव या उत्पन्न होना, "उ" का तात्पर्य है उठना, उड़ना अर्थात् विकास, "म" का मतलब है मौन हो जाना अर्थात् "ब्रह्मलीन" हो जाना। ॐ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और पूरी सृष्टि का द्योतक है। ॐ में प्रयुक्त "अ" तो सृष्टि के जन्म की ओर इंगित करता है, वहीं "उ" उड़ने का अर्थ देता है, जिसका मतलब है "ऊर्जा" सम्पन्न होना। किसी ऊर्जावान मंदिर या तीर्थस्थल जाने पर वहाँ की अगाध ऊर्जा ग्रहण करने के बाद व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को आकाश में उड़ता हुआ देखता है। मौन का महत्व ज्ञानियों ने बताया ही है। अंग्रजी में एक उक्ति है — "साइलेंस इज़ सिल्वर ऍण्ड ऍब्सल्यूट साइलेंस इज़ गोल्ड"। श्री गीता जी में परमेश्वर श्रीकृष्ण ने मौन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए स्वयं को मौन का ही पर्याय बताया है —

मौनं चैवास्मि गुह्यानां

"ध्यान बिन्दुपनिषद्" के अनुसार ॐ मन्त्र की विशेषता यह है कि पवित्र या अपवित्र सभी स्थितियों में जो इसका जप करता है, उसे लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होती है। जिस तरह कमल-पत्र पर जल नहीं ठहरता है, ठीक उसी तरह जप-कर्ता पर कोई कलुष नहीं लगता।

तैत्तिरीयोपनिषद शिक्षावल्ली अष्टमोऽनुवाकः में ॐ के विषय में कहा गया हैः-

ओमिति ब्रह्म । ओमितीदँसर्वम् । ओमित्येतदनुकृतिर्हस्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति ।ओँशोमिति शस्त्राणि शँसन्ति । ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ।ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ १ ॥

अर्थातः- ॐ ही ब्रह्म है। ॐ ही यह प्रत्यक्ष जगत् है। ॐ ही इसकी (जगत की) अनुकृति है। हे आचार्य! ॐ के विषय में और भी सुनाएँ। आचार्य सुनाते हैं। ॐ से प्रारम्भ करके साम गायक साम गान करते हैं। ॐ-ॐ कहते हुए ही शस्त्र रूप मन्त्र पढ़े जाते हैं। ॐ से ही अध्वर्यु प्रतिगर मन्त्रों का उच्चारण करता है। ॐ कहकर ही अग्निहोत्र प्रारम्भ किया जाता है। अध्ययन के समय ब्राह्मण ॐ कहकर ही ब्रह्म को प्राप्त करने की बात करता है। ॐ के द्वारा ही वह ब्रह्म को प्राप्त करता है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्तितपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्तितत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥ --(कठोपनिषद, अध्याय १, वल्ली २),

अर्थातः- सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के साधक कहते हैं, जिसकी इक्षा से (मुमुक्षुजन) ब्रह्मचर्य का पालन करते है, उस पद को मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ। ॐ यही वह पद है।

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षंसामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति॥ ७॥ -- (प्रश्नोपनिषद प्रश्न ५, श्लोक ७),

अर्थातः- साधक ऋग्वेद द्वारा इस लोक को, यजुर्वेद द्वारा आन्तरिक्ष को और सामवेद द्वारा उस लोक को प्राप्त होता है जिसे विद्वजन जानते हैं। तथा उस ओंंकाररूप आलम्बन के द्वारा ही विद्वान् उस लोक को प्राप्त होता है जो शान्त, अजर, अमर, अभय एवं सबसे पर (श्रेष्ठ) है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत॥ --(मुण्डकोपनिषद्, मुनण्डक २, खण्ड २, श्लोक-४)

अर्थातः- प्रणव धनुष है (सोपाधिक) आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। उसका सावधानी पूर्वक बेधन करना चाहिए और बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिए।। ४।।

ओमित्येतदक्षरमिदंसर्व तस्योपव्याख्यानं भूत,भवभ्दविष्यदिति सर्वमोंंकार एव।यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ १॥ -- (माण्डूक्योपनिषद, गौ० का० श्लोक १)

अर्थातः-ॐ यह अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है उसी की व्याख्या है;इसलिये यह सब ओंकार ही है। इसके सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ओंकार ही है।

सोऽयमात्माध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।। ८।। --(माण्डूक्योपनिषद् आ०प्र० गौ०का० श्लोक ८)

वह यह आत्मा ही अक्षर दृष्टि से ओंंकार है; वह मात्राओं का विषय करके स्थित है। पाद ही मात्रा है और मात्रा ही पाद है; वे मात्रा अकार, उकार और मकार हैं।

सनातन धर्म ही नहीं, भारत के अन्य धर्म-दर्शनों में भी ॐ को महत्व प्राप्त है। बौद्ध-दर्शन में "मणिपद्मेहुम" का प्रयोग जप एवं उपासना के लिए प्रचुरता से होता है। इस मंत्र के अनुसार ॐ को "मणिपुर" चक्र में अवस्थित माना जाता है। यह चक्र दस दल वाले कमल के समान है। जैन दर्शन में भी ॐ के महत्व को दर्शाया गया है।

महात्मा कबीर निर्गुण सन्त एवं कवि थे। उन्होंने भी ॐ के महत्व को स्वीकारा और इस पर "साखियाँ" भी लिखीं —

ओ ओंकार आदि मैं जाना।लिखि औ मेटें ताहि ना माना ॥ओ ओंकार लिखे जो कोई।सोई लिखि मेटणा न होई ॥

गुरु नानक ने ॐ के महत्वको प्रतिपादित करते हुए लिखा है —

ओम सतनाम कर्ता पुरुष निभौं निर्वेर अकालमूर्तयानी ॐ सत्यनाम जपनेवाला पुरुष निर्भय, बैर-रहित एवं "अकाल-पुरुष के" सदृश हो जाता है।

"ॐ" ब्रह्माण्ड का नाद है एवं मनुष्य के अन्तर में स्थित ईश्वर का प्रतीक।

गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने कहा था कि इस अव्यय योग को मैंने सृष्टि के आदि में सूर्य को कहा था, सूर्य ने मनु और मनु ने इक्ष्वाकु के प्रति कहा। नासा की रिपोर्ट के अनुसार ऐसा बताया जाता है कि लाखों वर्षो से जलता सूर्य से ॐ की ध्वनि रिकॉर्ड की गई है। अर्थात सूर्य की असीमित ऊर्जा का रहस्य भी ॐ का जाप ही है, यही सम्पूर्ण ब्रह्मांड में गूँजता मंत्र है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष ॐ ।। 8. 11 ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.12॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

sarva- dvārāṇi saḿyamya,
mano hṛdi nirudhya ca..।
mūrdhny ādhāyātmanaḥ prāṇam,
āsthito yoga- dhāraṇām..।।

भावार्थ:

शरीर के सभी द्वारों को वश में कर के तथा मन को हृदय में स्थित करके, प्राणवायु को सिर में रोक करके योग-धारणा में स्थित हुआ जाता है। (१२)

Meaning:

The yogic situation is that of detachment from all sensual engagements. Closing all the doors of the senses and confining the mind within the heart and establishing one’s praanaas in the forehead, situated in yogic concentration.

Explanation:

It is through the senses and their objects the world enters our mind. When we see, hear, touch, taste, or smell an object of perception, it leaves an impression on our mind. Our mind then dwells upon these experiences, starts to

contemplate, and creates repetitive thoughts that increase our attachment to the world. Therefore, a practitioner of meditation should guard himself against the incessant stream of worldly thoughts that the unrestrained senses can create. Locking the world out by restraining the mind and the senses; is most essential in meditation.

Shri Krishna describes the technique meditating upon the name of Ishvara in this shloka. He outlines a series of steps which are similar to the detailed analysis of meditation found in the sixth chapter. Four steps are presented here: 1) controlling the organs of sense perception, 2) reducing the number of thoughts to one, 3) directing the life force or praana, 4) and continuing to remain in this state of concentration for an extended period of time.

The first step is to control the organs of sense perception referred to here as "gates". In meditation, we are advised to select a spot where there is minimal distraction so that the mind does not rush out into the external world towards a sound, image or smell.

The second step is to "confine the mind within the heart". This means that we have to slowly reduce the number of thoughts to one thought using japa meditation, for instance. No other thought should enter the mind except the object of meditation.

The third and fourth steps require the oversight and training of an experienced master. For the sake of completeness, let's examine them anyway. An advanced yogi has the ability to control his praana or life force so that it could be focused in one part of the body. Here, such a yogi is asked to focus his life force in the forehead. Once this happens, the yogi is asked to maintain this position for an extended period of time. Such intense meditation requires tremendous effort and practice.

So then, assuming we are armed with the technique of meditation on Ishvara's name, what name should we use? This is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक में वेदविद, वीतरागी एवम ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले जिस परम पद पूर्ण स्वरूप अक्षर ब्रह्म का पालन करते है उसी को प्राप्त करने के लिये भगवान श्री कृष्ण योगधारणा की स्थिति को प्राप्त करने की विधि को क्रमबद्ध करते है।

यह संपूर्ण ज्ञान प्रयाण काल में परमात्मा को स्मरण करने की विधि और निर्गुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग है। इसे हम पतंजलि योग में अष्टांग योग के अंतिम चरण कैवल्य को प्राप्त करने हेतु समाधि और संयम को कैसे प्राप्त कर सकते है, से भी पढ़ सकते है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना में ब्रह्म को ध्यान लगाना कठिन है, इसलिए शुरुवात प्रतीक सगुण उपासना में भगवान की मूर्ति, चित्र, दीपक की लौ या बिंदु आदि किसी से भी करते हुए, निर्गुणाकर ब्रह्म का ध्यान लगाते है। इस के लिए प्रणव अक्षर ॐ का भी सहारा लिया जाता है। किंतु ध्यान से पहले की स्थिति को इस श्लोक में वर्णित करते हुए, भगवान श्री कृष्ण कह रहे है।

सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारों का संयम कर ले अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध - इन पाँचों विषयों से श्रोत्र त्वचा नेत्र रसना और नासिका - इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को तथा बोलना ग्रहण करना गमन करना मूत्रत्याग और मलत्याग - इन पाँचों क्रियाओं से वाणी हाथ चरण उपस्थ और गुदा - इन पाँचों कर्मेन्द्रियों से मन को सर्वथा हटा ले। इस से इन्द्रियाँ अपने स्थान में रहेंगी। मन इंद्रियाओ से जुड़ा रहने से संसार के सुख एवम दुख की अनुभूति होती रहती है। अतः सर्व प्रथम मन को इंद्रियाओ से हटा देने से मन की चंचलता वश में आती है और वह सांसारिक विषयो से हट कर स्थिर होता है। इंद्रियाओ को बाह्य जगत का द्वार भी कहते है। विक्षेपों की इन द्वारों को अवरुद्ध करने पर नये नये विक्षेपों का प्रवाह ही रुद्ध हो जाता है।

मन को स्थिर करने के बाद उस को हृदय में स्थापित करना है। नाभि एवम कंठ के मध्य हृदय स्थल है। इधर उधर भटकने वाले मन को संकल्प- विकल्पों से रहित कर के हृदय में निरुद्ध कर देना ही उसे हृदय में स्थिर कर देना है।

मन को हृदय में स्थापित करके यद्यपि इन्द्रियों के संयमित होने पर मन बाह्य विषयों से क्षुब्ध नहीं हो सकता तथापि भूतकाल के विषयोपभोगों से अर्जित वासनाओं के स्मरण से वह स्वयं ही विक्षुब्ध हो सकता है। इसलिए मन को हृदय में स्थापित करने का उपदेश दिया गया है। वेदान्त में हृदय का अर्थ शरीर में स्थित रक्त संचालक अवयव से नहीं है। साहित्य और दर्शन में हृदय का अर्थ स्नेह और सहृदयता करुणा और कृपा भक्ति और प्रपत्ति जैसी आदर्श एवं रचनात्मक भावनाओं का अनवरत् उद्गम स्थल है। बाह्य स्थूल विषयों की संवेदनाओं का मन में प्रवेश अवरुद्ध करने के पश्चात् साधक को चाहिये कि वह भावनाओं के साधनरूप मन को दिव्य एवं पवित्र बनाये न कि उसका दमन करे। हृदय के उच्च और श्रेष्ठ वातावरण में ही मन को स्थिर करना चाहिये। इसका विवेचन किया जा चुका है कि रचनात्मक विचारों की सहायता से मन के विक्षेपों को न्यूनतम किया जा सकता है। नकारात्मक विचार वह है जिसके कारण मन क्षुब्ध और चंचल हो जाता है।

यह प्रक्रिया सतत अभ्यास एवम गुरु के मार्ग दर्शन द्वारा ही हो पाती है, निर्गुणकार उपासक ध्यान योग द्वारा ज्ञान प्राप्ति कर ज्ञान युक्त योगी बनते है एवम उपासना एवम ध्यान लगाते है।

अब प्राणों को नियंत्रित कर हदय में लाते है और उसे ध्यान प्रक्रिया द्वारा ऊर्ध्व गामी नाड़ी द्वारा हृदय से उठा कर मस्तिक में ब्रह्मरन्ध्र में ले जा कर रोक देते है। इस प्रकार प्राण एवम मन दोनों ही ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाते है। प्राणशक्ति को मस्तक अर्थात् बुद्धि में स्थापित करने का अर्थ है बुद्धि को सभी निम्न स्तरीय विचारों एवं वस्तुओं से निवृत्त करना। विषय ग्रहण आदि के द्वारा बुद्धि का इनसे तादात्म्य रहता है। सतत आत्मानुसंधान की प्रक्रिया से बुद्धि को विषयों से परावृत्त किया जा सकता है।

इस प्रकार इंद्रियाओ का संयम और मन तथा प्राण का मस्तिक में भली भांति स्थित हो जाना ही योगधारणा में स्थित हो जाना कहलाता है। इन्द्रियों से कुछ भी चेष्टा न करना मन से भी संकल्प विकल्प न करना और प्राणों पर पूरा अधिकार प्राप्त करना ही योगधारणा है। **व्यवहारिक दृष्टिकोण से सिर्फ मन को ही बाहरी विषयो में न भटकाते हुए नियंत्रित करने से यह सब समझ मे आने लग जाता है।**

पूर्व श्लोक में निर्मल एवम स्वच्छ प्रज्ञा के बारे में जाना। ध्यान में बाह्य जगत से पहले राग-द्वेष समाप्त होने बाद यह राग-द्वेष आने अंदर से साफ होता है। जब योगयुक्त होकर दीपक के तुल्य आत्म तत्व से ब्रह्मतत्व को देखे, जो अजन्मा अटल और सब तत्वओ से विशुद्ध है, तब उस देव को जान कर सब फांसो से मुक्त हो जाता है, यही परम् लक्ष्य है। किन्तु इस उचाईयो को छूने के लिये प्रयत्न कर के अपना सर्वश्रेष्ठ बनाना चाहिए, जो निरन्तर अभ्यास से ही संभव है। यही कारण भी है गीता में श्लोक 9 में जिस परब्रह्म की बात की गई है और 10 में जो प्रयाण काल मे उस के स्मरण की बात को लगभग यहाँ भी कहा गया है।

योग धारणा सदाहरण मनुष्यो द्वारा संभव नही है क्योंकि बिना अभ्यास के योग नहीं होता, फिर ध्यान योग और उस की धारणा वर्षों की कठिन अभ्यास से प्राप्त होती है, जिस के भगवान श्री कृष्ण हमे पहले ही बता चुके है।

योग धारणा की इस स्थिति के प्रणव उपासना की शुरुवात प्रणव अक्षर (अ उ म) अर्ध चंद्र अर्थात 'ॐ' अर्थात एक अक्षर जिसे ही परम एवम ब्रह्म माना गया है, का जाप करते हुए किस प्रकार निर्गुणकार उपासक पूर्ण ब्रह्म में विलय करते है, यह हम अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।।8.12।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.13॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्‌ ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्‌॥

"oḿ ity ekākṣaraḿ brahma,
vyāharan mām anusmaran.. l
yaḥ prayāti tyajan dehaḿ,
sa yāti paramāḿ gatim"..।।

भावार्थ:

इस प्रकार ॐकार रूपी एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करके मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मनुष्य मेरे परम-धाम को प्राप्त करता है। (१३)

Meaning:

He who departs the body while chanting Om, which is the one-syllable (name of) brahman, and also remembers me, he attains the supreme state.

Explanation:

The sound “Om” has been praised in the scriptures as an indicator of brahman, the eternal essence. Shri Krishna concludes the second technique of meditation, meditation on the name of Ishvara, by saying that one who performs meditation on the sound of Om attains Ishvara during the time of departure.

The sound Om pervades the entire creation; it is imperishable and infinite like God Himself. Hence, it is also called anāhat nād. In the Vedic philosophy, it is conferred as the mahā vākya, or the Great Sound Vibration of the Vedas and often attached to the beginning of the Vedic mantras, as bīja (seed or core) mantra similar to hrīṁ, klīṁ, etc.

Like we saw in the previous instance, the symbolic meaning of this shloka also uses death as a metaphor to indicate death of the ego. Therefore, meditation on the sound of Om helps the seeker sever his connection to the finite ego and take him towards the infinite eternal essence.

The key thing, however, is to associate the sound “Om” to our understanding of Ishvara. In other words, meditation on the sound of Om without associating it to our favourite deity will not yield any result. In fact, Adi Shankaraachaarya in his commentary says that meditation on Om should only be performed by one who has diligently heard (“shravana”) and analyzed (“mananam”) the knowledge of the eternal essence. This is why Shri Krishna adds “remember me as Ishvara” to the instruction that we chant Om.

So, what does this Niṣkāma Omkāra upāsakaḥ will do at the time of death is the topic. And you should remember throughout this discussion, this upāsakaḥ has never come to nirguṇa īśvara; he has not come to vēdānta jñānam; therefore, he does not have aham brahmāsmi iti jñānam and therefore from vēdāntic angle, this person will come under ajñāni only. Even though he is a very informed person, with regard to all other things, even though he is very informed with regard to upāsana, he is ignorant with regard to one particular thing; what is that? the essential oneness between the jīvātma and

paramātma, he does not know. And if he has already that knowledge, he need not bother about kṛama mukthi at all, because with this knowledge itself liberation is guranteed here and now.

Ajñāni Niṣkāma upāsakaḥ uses Omkāra for remembering the Lord in his own concept with his own attributes; om iti vyāharan. So he utters the word Om which is ekākṣaram Brahma; which is ekākṣaram, which is mono syllabled word revealing Brahman. So ekākṣaram means a word of one syllable, because Om is only one syllable, and which reveals Brahman that ekākṣaram Brahman om iti vyāharan; utters. It does not mean that everyone has to utter Om; whatever he has practiced throughout the life, that nāma he has to utter.

And suppose a person says I have not practiced anything; that is why Krishna is warning, start practising now itself; Rāma Rāma Rāma start; that is why in our culture, even when they yawn they say Krishna Krishna Krishna, anything practice; and therefore whatever nama I have practiced, that I have to utter; the Omkāra upāsakaḥ utters Om iti vyaharan; vyāharan means uttering the word; and through this word anusmaran; he remembers, not any finite thing in the world, because none of them is going to accompany him.

To recap, the first technique was meditation upon the grand cosmic form of Ishvara, and the second technique was meditation upon Om. However, both techniques require us to develop control of our praanaas.

The time of death is the final test of our meditation. As death is said to be intensely painful and despite the pain, those who are able to focus on God even at that last moment; attain Him. And on leaving the body, their souls reach His divine abode. However, to achieve such a state is very difficult; it requires continuous practice throughout one’s life. The merciful Lord Krishna shows us an easier path in the next verse.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जिस अक्षर ब्रह्म श्लोक 11 में भगवान ने बताने की बात की थी वो अक्षर ब्रह्म जो नित्य, अविनाशी एवम एक मात्र परमात्मा है उसे उपनिषदों के आधार पर ॐ माना गया है।

एक व्यक्ति को प्रयाण काल में उस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान कैसे हो, जो भक्ति या कर्मयोग से चिदाभास अर्थात शुद्ध चित्त को तो प्राप्त कर लेता है किंतु उसे ज्ञान की प्राप्ति नही होती। वह निर्गुण ब्रह्म की उपासना शब्द अर्थात नाम जप से परमात्मा के नाम राम राम या कृष्ण कृष्ण आदि करते हुए करता है

या ॐ का पाठ जप के आधार से करता है। यह सगुण उपासना से स्मरण करते रहने से प्रयाण काल में ॐ या परमात्मा के उच्चारण करते रहने से वह उस के स्वभाव का भाग हो जाता है, जिस से उसे कर्म मुक्ति प्राप्त होती है और अंत काल में ब्रह्म लोक को प्राप्त हो जाता है। वहां उपासना से ज्ञान की प्राप्ति द्वारा जीवमुक्ती को प्राप्त करता है। अतः जप या परमात्मा के नाम के निरंतर जाप से यदि वह ज्ञान की उच्चतम स्थिति "अहम ब्रह्मास्मि" या "तत् त्वं असि" की स्थिति को नही भी प्राप्त करे किंतु अक्षर ब्रह्म के जप से मुक्ति के मार्ग को अवश्य प्राप्त कर लेता है। इसलिए यह श्लोक अक्षर ब्रह्म की उपासना प्रयाण काल में सगुण उपासक के द्वारा कैसे की जाए, तो बतलाता है।

पूर्व श्लोक में योग धारणा की स्थिति को प्राप्त करने के बाद जब मन को हृदय में रोक कर प्राणों को उर्ध्वगामी नाडी से ब्रह्मरंध (इस को दशम द्वार भी कहा गया है) तक पहुचा दिया जाता है तो ब्रह्म अर्थात परमात्मा से एकाकार करने के लिए ॐ को जपने का निर्देश दिया गया है। जपने का अर्थ स्वयं को ब्रह्म से एकाकार करना। इस एकाकार करते हुए योगी योग धारणा में ॐ के साथ शरीर को त्याग देता है तो उसे परम पुरुष का पद प्राप्त होता है और वह जन्म मरण से मुक्त हो कर परमात्मा में विलय कर जाता है।

ॐ अक्षर वर्ण का वाचक है, ब्रह्म नही । इस का वाच्य ही ब्रह्म है। अतः ॐ शब्द का जप एवम उस के स्वरूप ब्रह्म का ही ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार देह त्याग कर के योगी परम् गति अर्थात प्रकृति मुक्त आत्मा जन्म मरण रहित मुक्त आत्मा को प्राप्त करता है। श्री त्रिदंडी महाराज की गीता की व्याख्या के अनुसार परमात्मा एवम परम गति प्राप्त आत्मा दोनों भिन्न भिन्न है। अर्थात गीता के अनुसार गीता में ॐ तीन अक्षर उपनिषद की देन है यह जप के लिये "राम" या "शिव" भी हो सकते है। किंतु ॐ ब्रह्म का वाच्य रूप सही ज्यादा लगता है।

जीव परमात्मा का ही स्वरूप है, उस से अलग हो कर जब पंच तत्व के साथ मन, बुद्धि एवम अहंकार शरीर को धारण करता है तो सांसारिक सुखों के कारण अहम एवम मोह द्वारा कर्म बंधन में फस जाता है। जीवन मरण से मुक्ति एवम अपने परम पुरुष स्वरूप को प्राप्त करना ही मुक्ति है।

ध्यान के अभ्यास में मन को सफलता और कुशलतापूर्वक एकाग्र करने के लिए साधक को तीन कार्यों को सम्पादित करना होता है। इन तीनों का वर्णन इन श्लोकों में किया गया है जो उक्त क्रम में अभ्यसनीय है।(क) इन्द्रियों के द्वारा मन को संयमित करके इन्द्रिय अवयव स्थूल शरीर में स्थित हैं। श्रोत्र त्वचा चक्षु जिह्वा और घ्राणेन्द्रिय (नाक) ये वे पाँच द्वार हैं जिनके माध्यम से बाह्य विषयों की संवेदनाएं मन में प्रवेश करके उसे विक्षुब्ध करती हैं। विवेक और वैराग्य के द्वारा इन इन्द्रिय द्वारों को अवरुद्ध अथवा संयमित करना प्रथम साधना है जिसके बिना ध्यान में प्रवेश नहीं हो सकता। इनके द्वारा न केवल बाह्य विषय मन में प्रवेश करते हैं वरन् इन्हीं के माध्यम से मन बाह्य विषयों में विचरण एवं भ्रमण करता है। विक्षेपों की इन सुरंगों को अवरुद्ध करने पर नयेनये विक्षेपों का प्रवाह ही रुद्ध हो जाता है।(ख) मन को हृदय में स्थापित करके यद्यपि इन्द्रियों के संयमित होने पर मन बाह्य विषयों से क्षुब्ध नहीं हो सकता तथापि भूतकाल के विषयोपभोगों से अर्जित वासनाओं के स्मरण से वह स्वयं ही विक्षुब्ध हो सकता है। इसलिए मन को हृदय में स्थापित करने का उपदेश दिया गया है। नकारात्मक विचार वह है जिसके कारण मन क्षुब्ध और चंचल हो जाता है।(ग) प्राणशक्ति को मस्तक अर्थात् बुद्धि में स्थापित करने का अर्थ है बुद्धि को सभी निम्न स्तरीय विचारों एवं वस्तुओं से निवृत्त करना। विषय ग्रहण आदि के द्वारा

बुद्धि का इनसे तादात्म्य रहता है। सतत आत्मानुसंधान की प्रक्रिया से बुद्धि को विषयों से परावृत्त किया जा सकता है। उपर्युक्त तीन कार्यों के सम्पन्न होने पर मन की आत्मानुसंधान में जो दृढ़ स्थिति होती है उसे ही यहाँ योगधारणा कहा गया है।

शान्त मन में उठ रहीं ओंकार वृत्तियों को जो साक्षी होकर देख सकता है वही पुरुष प्रणवोपासना के योग्य है। श्लोक की अगली पंक्ति इस तथ्य को स्पष्ट करती है।देह त्याग कर जो जाता है ॐ के उच्चारण तथा उसके लक्ष्यार्थ पर मनन करने के फलस्वरूप साधक मिथ्या जड़ उपाधियों के साथ हुये अपने तादात्म्य से ऊपर उठ जाता है जिसके कारण अहंकार का लोप हो जाता है। यही वास्तविक मृत्यु है। देह त्याग का अभिप्राय है देहात्मभाव का त्याग।

वेदान्तिक मनुष्य के लिए शंकराचार्य जी द्वारा ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की उपासना का आधार कैसे करे, इस विषय को श्लोक 8.03 में हम ने कुछ भाग में पढ़ा, अब चिंतन के लिए वे कहते है।

"देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार भी ब्रह्म नहीं है। इन का अधिष्ठानभूत विशुद्ध सत्, अद्वितीय जो ब्रह्म है; वह मैं ही हूँ।"

"देश, काल, दिशा ब्रह्म नही कहै; स्थूल-सूक्ष्म आदि कोई वस्तु ब्रह्म नहीं है; किन्तु इन सबका आधारभूत शुद्ध, अद्वितीय, सत्स्वरूप जो परब्रह्म है, वही मैं हूँ।"

"जो ज्ञानी पुरुष सदा चलते, बैठते और सोते में बाहरी वस्तुओं से सम्बन्धवाले इस नामरूपात्मक दृश्य जगत को अधिष्ठानभूत सत्य, सत्स्वरूप ब्रह्मरूप देखता है; वह ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ।"

"संन्यासी, अध्यस्त नाम और रूप आदि को विलीन करके, ऐसा चिन्तन करे कि अद्वितीय आनन्दस्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ।"

"मैं निर्विकार, निराकार, निरंजन, अनामय, जन्म - मरण से रहित, पूर्ण ब्रह्म हूँ, इसमें संशय नहीं है।"

"मैं निष्कलंक, शुद्ध, निर्भय, देश - काल - वस्तु से शून्य, आनन्दरूप, अक्षर, मुक्त ब्रह्म ही हूँ; ऐसा चिन्तन करना चाहिए।"

"मैं निर्विशेष, आभासरहित, नित्यमुक्त, अविनाशी, अविकारी, अद्वितीय, प्रज्ञानरस, सत्स्वरूप ब्रह्म ही हूँ - ऐसी भावना करनी चाहिए।"

"मैं शुद्ध, बोधरूप, तत्त्वसिद्ध, परम, व्यापक, पूर्ण, स्वयं प्रकाश, परमआकाशरूप ब्रह्म ही हूँ - ऐसा विचार करना चाहिए।"

"मैं परमसूक्ष्म, सत्तामात्र, निर्विकल्प, महत्तम्, शुद्ध, परमअद्वैत ब्रह्म ही हूँ - ऐसा चिन्तन करना चाहिए।"

"पूर्वोक्त सूत्रों में वर्णित विधि अनुसार, निर्विकार शब्द ॐ आदि मात्र से जाने हुए शुद्ध वस्तु अर्थात ब्रह्म का ध्यान करनेवाले का अन्तःकरण लक्ष्य में प्रतिष्ठित हो जाता है।"

सामान्य व्यक्ति जिसे अपना अंत काल का ज्ञान नहीं एवम अंत काल मे उस की शारीरिक अवस्था भी योग के योग नहीं रहती, यहां तक कि मानसिक अवस्था भी बुद्धि एवम चेतन रह कर स्मरण कर सके

नहीं रहती। जिसके पास योग का बल होता है और जिस का प्राणों पर अधिकार होता है उस को तो निर्गुण- निराकार की प्राप्ति हो जाती है; परन्तु दीर्घकालीन अभ्यास-साध्य होने से यह बात सब के लिये कठिन पड़ती है। इसलिये भगवान् आगे के श्लोक में अपनी अर्थात् सगुण-साकार की सुगमता-पूर्वक प्राप्ति की बात कहते हैं। इन के लिये क्या करना चाहिए इसे हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.13।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.14॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनीः॥

"ananya-cetāḥ satataḿ,
yo māḿ smarati nityaśaḥ..।
tasyāhaḿ sulabhaḥ pārtha,
nitya- yuktasya yoginaḥ"..।।

भावार्थ:

हे पृथापुत्र अर्जुन! जो मनुष्य मेरे अतिरिक्त अन्य किसी का मन से चिन्तन नहीं करता है और सदैव नियमित रूप से मेरा ही स्मरण करता है, उस नियमित रूप से मेरी भक्ति में स्थित भक्त के लिए मैं सरलता से प्राप्त हो जाता हूँ। (१४)

Meaning:

One who thinks of me with a focused mind, without interruption, I become effortlessly available to that yogi that is constantly engaged (in me).

Explanation:

In the previous verse, Shree Krishna had explained the process of meditation as per ashtanga yoga sadhana to focus on the formless God, devoid of any attributes. However, this practice is not only difficult but also very bland. Therefore, He suggests an alternative method, that is, to meditate upon the personal forms of God such as Ram, Krishna, Shiv, Vishnu, etc., including their Names, Forms, Virtues, Pastimes, Abodes, and Associates. This method is simpler and helps in keeping the mind absorbed in God and His divine form.

Shri Krishna provides us with the simplest method of gaining access to Ishvara in this shloka. He says that no special technique is required. All that is needed is

that the seeker focus his mind on Ishvara, perform duties as per his svadharma but think about Ishvara all the time, without interruption.

For the first time in the Bhagavad Geeta, Shree Krishna says that He is easy to attain. But only to those yogis who are ananya- chetāḥ, which means their mind is absorbed exclusively in God. The word a- nanya Etymologically means na anya, or "no other." Thus, exclusive devotion is the precondition for attaining God.

The key point, however, is the phrase "without interruption". We had seen earlier that there is one thought that all of us have in the back of our minds. For some it is family, for some it is career and so on. It is like the drone of a "taanpura" in Indian classical music. Shri Krishna says that unless we make Ishvara that constant background thought, we will not attain him. Just performing a 30-minute meditation on Ishvara will not yield anything.

So, the question comes; how all these things are possible; especially at the time of death. For that Krishna's answer is in this verse, which he has already dealt with before. It is by sheer abhyāsa or practice; and what is the practice? All the time remembering the fact that everything that I am associated with, belongs to the Lord alone; and I have been given an opportunity to be with various people, so that I can learn to love them. It is a field, an exercising field to learn loving other people. Not to get security from them; not for taking anything from them; we will only be training in giving care, love, compassion; and my training all the time is, that it belongs to the Lord and I am using; and I have been given a nice opportunity.

Ishvara is very well aware that most of us do not give him top priority. This is famously depicted in the image of Lord Vitthala, a deity of Lord Vishnu from Maharashtra. He is portrayed as standing with hands on his waist as if to say "I have been waiting here for a long time, when will you come?" This is due to our preoccupation with worldly matters. A deep-seated attraction towards spiritual knowledge, combined with blows from the world, will slowly but surely move the seeker towards constant meditation upon Ishvara.

And when the time of separation comes also; my thinking is that everyone belongs to the Lord and therefore Lord has to take care of everyone.

So therefore, Shri Krishna has provided a simple and straight forward method to attain Ishvara: keep Ishvara as the constant thought but do your duty. It does not require us to perform any kind of specialized yogic meditation. What happens when we follow this path? This is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

आठवें से तेरहवें श्लोक तक सगुणनिराकार और निर्गुणनिराकार का स्मरण बताया गया। इन दोनों स्मरणों में अष्टांग योग के अंतर्गत प्राणायाम की मुख्यता रहती है जिस को सामान्य मनुष्य सिद्ध करना कठिन है। अन्तकाल जैसी विकट अवस्था में भी प्राणायाम के बल से प्राणों को भ्रुवों के मध्य में स्थापित कर सकें अथवा मूर्धा (दशम द्वार) में लगा सकें - ऐसा प्राणों पर अधिकार रहने की आवश्यकता है। यह सामान्य जीव के संभव नही।

इस लिये भगवान सगुणाकार परमात्मा की उपासना करने वालो को नित्य, निरंतर एवम अखंड स्मरण करने की सलाह देते है। यह स्मरण किसी भी देवता या अक्षर ब्रह्म शब्द ॐ का भी को सकता है। भगवान् के स्मरण में यह कठिनता नहीं है क्योंकि यहाँ प्राणों का खयाल नहीं है। यहाँ तो भगवान् के साथ साधक का स्वयं का अनादिकाल से स्वतःसिद्ध सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में इन्द्रियाँ मन बुद्धि प्राण आदि की भी जरूरत नहीं है। अतः इस में अन्तकाल में प्राण आदि को लगाने की जरूरत नहीं है। जैसे किसी वस्तु का बीमा होने पर वस्तु के बिगड़ने टूटने फूटने की चिन्ता नहीं रहती ऐसे ही शरीर इन्द्रियाँ मन बुद्धिसहित अपने आप को भगवान् के समर्पित कर देने पर साधक को अपनी गति के विषय में कभी किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता नहीं होती। कारण कि यह साधन क्रियाजन्य अथवा अभ्यास जन्य नहीं है। इस में तो वास्तविक सम्बन्ध की जागृति है। अतः इस में कठिनता का नामोनिशान नहीं है। इस प्रकार का स्मरण करने से परमात्मा स्वयं मोक्ष का द्वारा उपलब्ध करवाते है।

भगवान कहते है जिस की चित्तवृत्ति में सर्वात्मा के सिवा अन्य कुछ है ही नही और जिस की दृष्टि में दृश्यमान प्रपंच अकाशवत शून्य हो गया है, ऐसा अनन्य चेता तो अपनी समस्त वृत्तियों में मुझे निरंतर भजता है। उसे शरीर त्याग कर कहीं आना जाना नहीं होता वो तो जीते जी सदा ही मुक्त है। उस तत्ववेता के प्राण को मरण काल मे ऊपर ब्रह्मरंध तक उठाने की आवश्यकता नही होती। उस के लिए वो स्वयं ही सुलभ है।

इसी तरह से भक्त भगवान् के ही परायण रहता है। यहाँ अनन्यचेताः पद सगुणउपासना करने वाले का वाचक है। सगुणउपासना में विष्णु राम कृष्ण शिव शक्ति गणेश सूर्य आदि जो भगवान् के स्वरूप हैं उन में से जो जिस स्वरूप की उपासना करता है उसी स्वरूप का चिन्तन हो। परन्तु दूसरे स्वरूपों को अपने इष्ट से अलग न माने और अपने आप को भी अपने इष्ट के सिवाय और किसी का न माने तो उस का अन्य की तरफ मन नहीं जाता। तात्पर्य यह हुआ कि मैं केवल भगवान् का हूँ और भगवान् ही मेरे हैं मेरा और कोई नहीं है तथा मैं और किसी का नहीं हूँ ऐसा भाव होने से वह अनन्यचेताः हो जाता है।

एक महावाक्य कि है भगवान! मैं तुम्हे भूलूंगा नही और अनन्य भाव में पढ़े कि है भगवान! मैं तुम्हे सदा ही हृदय से अनन्य भाव से स्मरण करता रहूं, जिस से तुम्हे अन्तकाल में भी न भूल सकूं।

परमात्मा का स्मरण भक्ति भाव से निष्काम होना चाहिये। इस मार्ग में लोग परमात्मा से अपना संबंध संत भाव, दास भाव, सखा भाव, वात्सल्य भाव अथवा माधुर्य भाव से बना कर उसे भजते रहते है। स्मरण में प्रेम बसता है, प्रेम का अर्थ है निष्काम, निस्वार्थ, निर्मोह और निर्लिप्त भाव का समर्पण।

स्मरण हृदय में बसे भाव मे है, यह भाव मे कर्म करते हुए भी स्मरण किया जा सकता है, जैसे संत कबीर एवम रविदास आदि कर्मयोगी संत करते थे।

जीव का वास्तविक सम्बन्ध परमात्मा से है, प्रकृति से उस का सम्बन्ध नित्य नही है, वह अज्ञान का सम्बन्ध है। जो आज के कल बदल जाता है। जन्म से बालक, युवा, वृद्ध आदि अनेक रूप एवं क्षर होते शरीर मे किंतने सम्बन्ध, बंधु, वस्तु आदि जुड़ती और छूटती है, उस को इस कारण पता नही किन्तु यह उस का अप्रत्यक्ष वैराग्य है। भगवान ने स्मरण का योग मार्ग बताया किन्तु वह भी कठिन लगे तो भक्ति मार्ग बता रहे है कि ह्रदय से उन को स्मरण करते रहो तो भी जीव को परमात्मा अपना लेता है।

यहाँ श्रीकष्ण अत्यन्त सावधानी से विशेष बल देकर आग्रह करते हैं कि यह आत्मानुसंधान या ईश्वर स्मरण नित्य निरन्तर और अखण्ड होना चाहिये। उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न योगी को हे अर्जुन मैं सुलभ हूँ। भगवान् का यह कथन विशेष महत्व एवं अभिप्राय रखता है क्योंकि इन गुणों के अभाव में ध्यान में सफलता की आशा नहीं की जा सकती। भगवान ने अर्जुन को उन्हे हृदय से स्मरण करते हुए युद्ध की आज्ञा दी थी, क्योंकि पूर्व में अष्टांग योग युक्त के साथ निर्गुण ब्रह्म को सगुण स्वरूप में पूजना कर्मयोगी के लिए कठिन होता है, तो हृदय से स्मरण करना अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है।

आदि गुरु शंकराचार्य ने अभ्यासी योगी को ब्रह्म स्वरूप की प्राप्ति के श्लोक 8.03 एवम 8.13 में जो चिंतन, मनन और स्मरण का माध्यम कहा था, उस से लिए वे आगे कहते है।

ब्रह्मानंदरस में आसक्ति हो जाने से, उस ब्रह्मरूप से एकाकार बुद्धि की जो निश्चल/ स्थिर अवस्था है, उसे निर्विकल्प समाधि कहा जाता है।

अनन्य भाव से जब कोई भक्त भी यदि परमात्मा का नाम का स्मरण शुरू कर देता है, तो उस के आत्मस्वरुप भी चिदाभास हो कर ब्रह्म स्वरूप होने लगता है। वस्तुतः गीता भक्ति योग का यह कथन आगे भक्ति योग में और अधिक स्पष्ट हो कर सुनेगे।

आत्मप्राप्ति के लिए परमात्मा का निरंतर स्मरण क्यों किया जाय इसे हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.14।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.15॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

"mām upetya punar janma,
duḥkhālayam aśāśvatam..।
nāpnuvanti mahātmānaḥ,

saṁsiddhiṁ paramāṁ gatāḥ"..।।

भावार्थ:

मुझे प्राप्त कर के उस मनुष्य का इस दुख-रूपी अस्तित्व- रहित क्षणभंगुर संसार में पुनर्जन्म कभी नही होता है, बल्कि वह महात्मा परम-सिद्धि को प्राप्त करके मेरे परम-धाम को प्राप्त होता है। (१५)

Meaning:

Having obtained me, these esteemed do not attain rebirth, the transient abode of sorrow. They attain the goal of supreme success.

Explanation:

From this verse, that is 15th up to 22nd verse, Krishna wants to talk about two types of human goals. Two types of possible human goals; one human goal he calls God; and the other human goal he calls world; God and world. You can understand them as the infinite and the finite, the spiritual and the material. And he wants to point out that for an intelligent person, God alone becomes the primary goal; for only the indiscriminate one everything other than God becomes the goal.

What happens if we diligently meditate upon Ishvara while performing our duties? Shri Krishna provides the answer in this shloka. He says that such people do not attain rebirth after they die. They attain something much higher - they attain Ishvara himself.

First, let us examine how Shri Krishna describes our present condition. Our worldly existence is transient, which means that there is no sense of permanence. Look at our body. It grows from a small baby all the way into adulthood and old age. There is not one moment where it is the same. Similarly, all aspects of our life are impermanent. Therefore, Shri Krishna summarizes our existence in one word “duhkhaalaya” or abode of sorrow. It is a constant quest for happiness through impermanence, which is like trying to hold on to a bubble.

But why does God put us through so much pain and misery? In God’s grand design, the purpose of these miseries is to realize that the material realm is not the permanent abode for the soul. It serves as a correction home for the souls who have forgotten God and are trapped in the material world. These

sufferings and miseries help the souls develop the desire for God. Consider an example of a person who accidentally puts his hand on burning coal. Immediately, due to the burning sensation and pain he experiences, he withdraws his hand.

What really happened here? When the man touched hot coal, his skin started burning, and the neurons on his skin sent a message to the brain of the pain he experienced. The brain immediately sends commands to his hand muscles that remove his hand to avoid further burning and pain. Therefore, pain is a signal that something is not right and needs correction. Similarly, the pain and miseries that we experience in the material world; are stimulation for us to shun our defective consciousness. These inspire and motivate the lost souls to tread toward their ultimate goal of union with God.

Most people are well entrenched in this pursuit thinking that it is normal. But some have figured out the fallacy in this pursuit and begun their journey towards Ishvara. They are referred to as “mahaatmaas” or esteemed individuals in this shloka. Those who sincerely pursue this path attain the supreme goal: Ishvara himself. If we get Ishvara, we will not get revisit the world ever again. It is like waking up from a dream - we will not get to go back. So if we hold on to the world, we will never get Ishvara. It is an either/or situation.

So therefore, once we decide that our goal is Ishvara, and develop dispassion or vairagya towards the world, we should diligently pursue karma yoga combined with meditation as prescribed by Shri Krishna in the Gita. Here, Shri Krishna concludes the topic of attainment of Ishvara through meditation. The next topic around creation and dissolution of the universe is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अन्तकाल में परमात्मा का नाम स्मरण किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए अष्टांग योग द्वारा या नाम जप में स्मरण द्वारा कैसे संभव है, इस सातवें प्रश्न का उत्तर देने के बाद, ईश्वर द्वारा जीव को भौतिक और ब्रहमत्व की प्राप्ति के मार्ग के चयन पर आगे सुनते है।

यह सत्य है कि भौतिक संसार में शरीर से ले कर कुछ भी स्थायी नही है, भौतिक सुखों में संतुष्टि का अभाव भी रहता है और यह संसार प्रकृति के नियमों से चलता है, इसलिए जीव को भी परतंत्र हो कर जीवन जीना पढ़ता है।

अतः यह जीवन का उद्देश्य मुक्ति अर्थात मोक्ष का होना चाहिए जिस से जीव जन्म मरण के चक्कर से मुक्त हो जाए। उस के लिए ही अभी तक हम ने निष्काम, निर्लिप्त भाव से श्रद्धा और विश्वास से प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिए।

अतिशय श्रद्धा और प्रेम के साथ नित्य निरंतर भजन ध्यान का साधन करते करते जब साधन की वह पराकाष्ठा रूप की स्थिति प्राप्त हो जाती है जिस के प्राप्त होने के बाद फिर कुछ भी साधन करना शेष नही रह जाता है और उसे परमात्मा ही चारो ओर नजर आने लग जाता है तो उस पराकाष्ठा की स्थिति को परमसिद्धि कहते है एवम जो भक्त इस सिद्धि को प्राप्त होता है उसे भगवान श्री कृष्ण ने महात्मा कहा है अर्थात इस संसार मे सभी जीव की आत्माओं से महान आत्मा। संत चेतन्य महाप्रभु, सूरदास, मीरा, कबीर, रैदास, तुलसीदास आदि सभी परमसिद्धि प्राप्त महात्मा ही थे।

जो आरम्भ से ही भक्तिमार्ग पर चलते हैं, उन साधकों को भी भगवान् ने 'महात्मा' कहा है, जो भगवत्तत्त्व से अभिन्न हो जाते हैं उनको भी 'महात्मा' कहा है और जो वास्तविक प्रेम को प्राप्त हो जाते हैं, उनको भी 'महात्मा' कहा है । तात्पर्य है कि असत् शरीर-संसारके साथ सम्बन्ध होनेसे मनुष्य 'अल्पात्मा' होते हैं; क्योंकि वे शरीर-संसारके आश्रित होते हैं। अपने स्वरूपमें स्थित होनेपर वे 'आत्मा' होते हैं; क्योंकि उन में अणुरूप से 'अहम्' की गंध रहने की संभावना होती है। भगवान् के साथ अभिन्नता होनेपर वे 'महात्मा' होते हैं; क्योंकि वे भगवन्निष्ठ होते हैं, उनकी अपनी कोई स्वतन्त्र स्थिति नहीं होती।भगवान् ने गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि योगों में 'महात्मा' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। केवल भक्तियोग में ही भगवान् ने महात्मा शब्दका प्रयोग किया है। इस से सिद्ध होता है कि गीता में भगवान् भक्ति को ही सर्वोपरि मानते हैं।

महात्मा कहने का एक और अभिप्राय यह भी है कि प्रभु को समर्पण भाव से स्मरण करने वाला विपत्तियों से विचलित नहीं होता एवम स्मरण करना नही छोड़ता। भक्त प्रह्लाद इस का उदाहरण है। यह लोग क्षमाशील, सत्य के मार्ग पर चलने वाले, धैर्यवान, संतोषी, नम्र एवम सज्जन होते है। भीष्म पितामह, कर्ण, आज के युग मे गांधी, रामसुख दास जी, डोंगरे महाराज, तुलसी दास आदि चंद नाम ही लाखो मनुष्यो में गिने जा सकते है।

निरंतर भजन एवम स्मरण करने वालो को परमात्मा सुलभ है तो इन परमसिद्धि प्राप्त महात्मा भी परमात्मा में ही अपने अंत समय के बाद मिल जाते है। इन के अंतकाल में परमात्मा स्वयं सुलभ हो कर इन की मुक्ति हो प्रदान करता है।

भगवान् ने गीता में अपनी भक्ति की बहुत विशेषता से महिमा गायी है। भगवान् ने भक्त को सम्पूर्ण योगियों में युक्ततम (सब से श्रेष्ठ) कहा है और अपने- आप को भक्त के लिये सुलभ बताया है। परन्तु अपने आग्रह का त्याग कर के कोई भी साधक केवल कर्मयोग, केवल ज्ञानयोग अथवा केवल भक्तियोग का अनुष्ठान करे तो अन्त में वह एक ही तत्त्व को प्राप्त हो जाता है। इस का कारण यह है कि साधकों की दृष्टि में तो कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग-- ये तीन भेद हैं, पर साध्यतत्त्व एक ही है। साध्यतत्त्व में भिन्नता नहीं है।

श्रीकृष्ण भी यहाँ पुनर्जन्म को दुःखालय और अशाश्वत कहते हैं।मनुष्य को सब अनुभवों में मृत्यु का अनुभव सर्वाधिक भयानक प्रतीत होता है। उस के ज्ञान में वृद्धि हुई और विचारों में परिपक्वता आयी तब शीघ्र ही अध्यात्म के विचारक ऋषियों ने यह पाया कि जो लोग यह समझ लेते हैं कि जीवन के अनुभवों में मृत्यु भी एक है तो उनके लिए मृत्यु की भयंकरता समाप्त हो जाती है। उस को ही जन्म वृद्धि व्याधि क्षय और मृत्यु के सम्पूर्ण दुःख और कष्ट सहने होते हैं।

भगवान ने इस संसार को दुःखो का घर कहा है। इस संसार मे जो भी इन्द्रिय जनित सुख है वो नाशवान है, अनित्य है। जीव समय के अनुसार अपना रूप बदलता रहता है। जन्म से मृत्यु तक कुछ भी स्थिर नही। कुछ पाने के बाद उस के जाने का दुख और कुछ न पाने के कारण उस के न पाने का दुख। हजारों सालों का कितना भी गौरवशाली इतिहास रहा हो किन्तु स्थिर कुछ भी नही। न तो व्यक्ति, न ही इस संसार मे की गई समृद्धि। अतः बार बार जन्म लेना भी क्षणभंगुर ही है।

अतः जीवन का लक्ष्य पुनर्जन्म का अभाव होना चाहिए।पुनर्जन्म का स्वप्न और उसके अपरिहार्य कष्ट मिथ्या अहंकार अथवा जीव को ही होते हैं। अजन्मा आत्मा ही जड़ उपाधियों के साथ तादात्म्य से जीवभाव को प्राप्त होता है।

जीव को मोक्ष कर्म और जन्म दोनो ही मुक्ति होने से मिलता है। कर्म मुक्ति में जीव जन्म - मरण के चक्कर से बच जाए तो ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है और महंत, मन और बुद्धि से मुक्त हो जाए तो मोक्ष को प्राप्त हो कर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

अतः पूर्ण मुक्ति क्या है एवम मृत्यु के बाद प्राप्त लोको में क्या श्रेष्ठ है, इस को हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत।।08.15।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.16॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

"ā-brahma-bhuvanāl lokāḥ,
punar āvartino 'rjuna..।
mām upetya tu kaunteya,
punar janma na vidyate"..।।

भावार्थ:

हे अर्जुन! इस ब्रह्माण्ड में निम्न-लोक से ब्रह्म-लोक तक के सभी लोकों में सभी जीव जन्म-मृत्यु को प्राप्त होते रह्ते हैं, किन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मुझे प्राप्त कर के मनुष्य का पुनर्जन्म कभी नहीं होता है। (१६)

Meaning:

O Arjuna, all worlds including the abode of Brahma (are subject to) return. But having obtained me, O Kaunteya, rebirth does not occur.

Explanation:

According to the scriptures, there exist heavens or worlds subtler than our visible universe. All beings on this earth who perform meritorious deeds go to one of those heavens after death. The abode of Lord Brahma (Brahma- loka) is considered the highest among the heavens. Shri Krishna says that all beings who end up in these heavens, including the world of Lord Brahma, do not stay there permanently. They have to return to earth at some point. Only those who attain Ishvara gain permanent liberation.

According to the Vedic scriptures, there are fourteen worlds in our universe. Seven planes of existence beginning with earth and higher —bhūḥ, bhuvaḥ, swaḥ, mahaḥ, janaḥ, tapaḥ, satyaḥ. The higher planes are the celestial abodes called the Swarga. The remaining seven planes that are lower than earth are the hellish abodes called narak. These are —tal, atal, vital, sutal, talātal, rasātal, pātāl. Similar references are made by other religions as well. Islam mentions the seventh sky or the sātvāñ āsmān as the highest of the seven heavens. The Talmud, the book of Jewish law and theology, has also enumerated seven heavens, the highest being Araboth.

These fourteen planes of existence are called the lokas or various worlds of our universe. The satyaḥ lok, also known as Brahma Lok, the abode of Brahma is the highest among them, and pātāl lok is the lowest. However, all these lokas are under the realm of Maya, the material energy of God.

Therefore, he says: Hey Arjuna, all the 14 lōkās, exist within time and space. There is only one thing which is beyond time and space, which is Īśvaraḥ; otherwise called Brahman in vēdāntic language; he will talk about that later. There is only one thing, which is unlocated; whereas the other lōkās are within time and space, that is why you have to travel to reach them. So the very fact that you have to travel indicates that it is not available here.

And what about brahma lōkā? He says up to brahma.

lōkā, even Brahmaji is not permanent. Even Brahmāji, the creator is not permanent.

The first half of the shloka is applicable to seekers who perform karma yoga diligently and worship Ishvara as well. Depending upon the sincerity of their deeds and worship, they will attain the appropriate heaven. A select few attain the abode of Lord Brahma which is the highest possible heaven. Here, it is said that the residents only enjoy pleasure. There is no sorrow or suffering whatsoever.

Once they attain the abode of Lord Brahma, they are faced with a choice. They can continue to remain interested in pleasure seeking or attain liberation. Attainment of Ishvara is the same as liberation. If they continue to remain interested in pleasure seeking, if they think of Brahma loka as yet another realm of space and time, they will eventually come back to earth and start life all over again. If they are interested in liberation, they will attain it when Brahma loka is dissolved along with all of the other worlds. This kind of liberation is called “krama mukti”.

Now, the questions arise, why do all of these world’s end? The topic of cosmic creation and dissolution is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

मुक्ति क्या है, सुख किसे कहे। जीवन का क्या लक्ष्य हो, जब तक वस्तु विषय का गहन अध्ययन न हो तो संशय की संभावना बनी रहती है। इसलिये गीता जीवन के समस्त रहस्य स्पष्ट करते हुए कहती है कि मृत्यु लोक से ब्रह्म लोक तक के 14 लोक काल के अंतर्गत आते है, इसलिये कोई भी नित्य नही है। जब ब्रह्मा जी, जिन्होंने परब्रह्म की आज्ञा से इस संसार की रचना की, नित्य नही है तो जीव किंतने भी पुण्य फल के अनुसार मृत्यु के बाद किसी भी लोक में जाये, उसे अपने पुण्य फल को भोग कर मुक्ति के लिये पुनः मृत्युलोक आना हो होगा। इसलिये मुक्ति क्या है, इस को तुलसीदास जी कहते है।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।। जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अविनासी।।

तुलसीदास जी यह पंक्ति इसी बात को कहती है कि जो व्यक्ति राम कहते हुए शरीर छोड़ता है वो भगवान के समीप पहुंच कर पुनः नही आता। भगवान श्री कृष्ण जी कहते है यज्ञ देवता राधन और वेदाध्ययन प्रभृति कर्मो से यद्यपि इंद्रलोक, वरुण लोक, सूर्यलोक अर्थात स्वर्ग से ले कर वैकुण्ठ लोक और यहां तक की ब्रह्म लोक भी प्राप्त हो जाये किन्तु जैसे ही पुण्य कर्मों के फलो अर्थात पुण्याश की समाप्ति होगी, पुनरावर्तन के नियमानुसार उसे भूलोक में आना ही पड़ेगा। ज्ञान द्वारा केवल मेरी प्राप्ति से ही पुनर्जन्म एवम पुनरावृति से छुटकारा संभव है, इस के सिवा अन्य कोई उपाय न हुआ है और न होगा।

वैदिक ग्रंथों में पृथ्वी लोक से नीचे सात लोकों-तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल,और पाताल के अस्तित्व का वर्णन किया गया है। इन सबको नरक या नरक लोक कहा जाता है। पृथ्वी लोक से आरम्भ होकर इसके उपर सात लोक-भूः, भूवाः, स्वाः, महाः, जनः, तपः, और सतयः लोक अस्तित्व में हैं। इन सबको 'स्वर्ग' या 'देवलोक' भी कहा जाता है। अन्य धार्मिक परंपराओं में भी सात स्वर्गों का वर्णन मिलता है। यहूदी धर्म के तलमुड ग्रंथ में अराबोथ नाम के उच्च लोक सहित सात स्वर्गों का उल्लेख किया गया है (सॉल्म-68.4)। इस्लाम में भी सात स्वर्ग लोकों का उल्लेख किया गया है जिसमें 'सातवाँ आसमान' की गणना सबसे उच्च लोक के रूप में की गई है। सृष्टि में भिन्न-भिन्न ग्रह जिनका अस्तिव है, उन्हें विभिन्न लोक कहा गया है। हमारे भौतिक ब्रह्माण्ड में 14 लोक हैं। इसमें सबसे उच्चतम ब्रह्मा का लोक है जिसे ब्रह्मलोक कहा जाता है। इन सभी लोकों में माया का प्रभुत्व रहता है। इन लोकों के निवासी जन्म-मृत्यु के चक्र के अधीन होते हैं। श्रीकृष्ण ने पिछले श्लोक में इन्हें 'दुःखालयम और अशाश्वतम्' अस्थायी एवं दुखों से भरा भी कहा है।

मात्र पृथ्वी मण्डल का राजा हो और उस का धन धान्य से सम्पन्न राज्य हो स्त्री पुरुष परिवार आदि सभी उस के अनुकूल हों उस की युवावस्था हो तथा शरीर नीरोग हो, यह मृत्युलोक का पूर्ण सुख माना गया है। मृत्युलोक के सुख से सौ गुणा अधिक सुख मर्त्य देवताओं का है। मर्त्य देवता उन को कहते हैं जो पुण्यकर्म कर के देवलोक को प्राप्त होते हैं और देवलोक के प्रापक पुण्य क्षीण होने पर पुनः मृत्युलोक में आ जाते हैं। इन मर्त्य देवताओं से सौ गुणा अधिक सुख आजान देवताओं का है। आजान देवता वे कहलाते हैं जो कल्प के आदि में देवता बने हैं और कल्प के अन्त तक देवता बने रहेंगे। इन आजान देवताओं से सौ गुणा अधिक सुख इन्द्र का माना गया है। इन्द्र के सुख से सौ गुणा अधिक सुख ब्रह्मलोक का माना गया है। इस ब्रह्मलोक के सुख से भी अनन्त गुणा अधिक सुख भगवत्प्राप्त तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुष का माना गया है। तात्पर्य यह है कि पृथ्वीमण्डल से ले कर ब्रह्मलोक तक का सुख सीमित परिवर्तनशील और विनाशी है। परन्तु भगवत्प्राप्तिका सुख अनन्त है अपार है अगाध है।

ब्रह्मलोक में जानेवाले पुरुष दो तरह के होते हैं--एक तो जो ब्रह्मलोक के सुख का उद्देश्य रख कर यहाँ बड़े-बड़े पुण्यकर्म करते हैं तथा उस के फल स्वरूप ब्रह्मलोक का सुख भोगने के लिये ब्रह्मलोक में जाते हैं और दूसरे, जो परमात्मप्राप्ति के लिये ही तत्परतापूर्वक साधन में लगे हुए हैं; परन्तु प्राणों के रहते-रहते परमात्मप्राप्ति हुई नहीं और अन्तकाल में भी किसी कारण- विशेष से साधन से विचलित हो गये, तो वे ब्रह्मलोक में जाते हैं और वहाँ रहकर महाप्रलय में ब्रह्माजी के साथ ही मुक्त हो जाते हैं। इन साधकों का ब्रह्मलोक के सुखभोग का उद्देश्य नहीं होता; किन्तु अन्तकाल में साधन से विमुख होने से तथा अन्तःकरण में सुखभोग की किञ्चिन्मात्र इच्छा रहने से ही उन को ब्रह्मलोक में जाना पड़ता है। इस प्रकार ब्रह्मलोक का सुख भोग कर ब्रह्माजी के साथ मुक्त होने को 'क्रम-मुक्ति' कहते हैं। परन्तु जिन साधकों को यहीं बोध हो जाता है वे यहाँ ही मुक्त हो जाते हैं। इस को 'सद्योमुक्ति' कहते हैं। सदाहरण भाषा में जीव की कर्म मुक्ति और जीव मुक्ति दो मुक्ति होने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

परमात्मा अत्यंत सूक्ष्म से अति सूक्ष्म नित्य एवम अविनाशी है। जीव के पुनरावर्तन अर्थात जन्म मरण का चक्र तभी समाप्त होता है जब परमात्मा से निकला हुआ जीव पुनः परमात्मा में विलय हो जाये। अतः आर्त, अर्थार्थी एवं जिज्ञासु भक्त सात्विक वृति के होने से दान-पुण्य, धर्म-कर्म एवम योग और भक्ति से विभिन्न लोक में पहुंच कर सुख को प्राप्त होते है किंतु जीवात्मा की मुक्ति तो तब तक नही है, जब तक वह परब्रह्म में पुनः विलीन न हो जाये। यह 14 लोक कामना और आसक्ति से परिपूर्ण जीवन के कारण

कर्म फल भोगने के विभिन्न लोक ही कहे जा सकते है, इसलिए सभी त्रिगुणात्मक प्रकृति और माया के अंतर्गत ही कार्य करते है।

ज्ञान का व्यवहारिक स्वरूप जीवन का वो आदर्श होता है, जिन को धारण कर के हम अपना जीवन व्यतीत करते है, अतः पहले हम परिणाम पढ़कर, उन जीवन के आदर्शों को भी पढ़ेंगे, जो अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व की पहचान होती है। किसी महल को देख कर ही उस के निर्माण को समझा जा सकता है इसलिये मुक्ति को समझ कर ही हम समझ सकते है कि उस के हमारा चरित्र, आस्था, कर्म, श्रद्धा एवम धर्म का क्या स्वरूप होना चाहिए। इसलिये भगवान हमे पंक्ति डर पंक्ति हर बात को एक एक कह के समझा रहे है।

ब्रह्म लोक भी अनित्य क्यों है इस को हम इस लोक के काल की गणना द्वारा आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।।08.16।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.17॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

"sahasra-yuga-paryantam,
ahar yad brahmaṇo viduḥ.. l
rātriḿ yuga- sahasrāntāḿ,
te 'ho- rātra- vido janāḥ".. l l

भावार्थ:

जो मनुष्य एक हजार चतुर्युगों का ब्रह्मा का दिन और एक हजार चतुर्युगों की ब्रह्मा की रात्रि को जानते है वह मनुष्य समय के तत्व को वास्तविकता से जानने वाले होते हैं। (१७)

Meaning:

They who know the day of Brahma comprising a thousand yugaas, the night of Brahma comprising a thousand yugaas, those people know day and night.

Explanation:

We now enter into the topic of cosmic creation with this shloka. Before the topic is taken up, Shri Krishna introduces some words here as a way of introduction. The new words introduced here are sahastra and yuga. Although not mentioned explicitly, we shall also look at the four yugas or ages that are part of the cosmic creation: satya yuga, treta yuga, dvaapara yuga and kali yuga.

The Vedic cosmological system has measurements of time that are vast and astounding. Consider this example of an insect, that is, born at night and within the same night it grows, procreates, lays eggs, and grows old. The next morning, you find it dead under the streetlight. If one tells that insect that its entire lifespan was only equal to one night of a human, that will be unbelievable for the insect. Similarly, the measurements of time given in the Vedas are beyond normal human imagination.

The Vedas state that one year on the earth equals; one day and night of Indra and other celestial gods. Thus, one year of the celestial gods consisting of 12 x 30 days equals 360 years on the earth plane. The calculation goes much further; 12,000 years of the celestial gods makes one mahā yug (cycle of four yugas) on the earth plane, that is, 4.32 million years. Following is the Vedic calculation of time periods or yugas on the earth plane:

Kali Yug: 432,000 years

Dwāpar Yug: 864,000 years

Tretā Yug: 1,296,000 years

Satya Yug: 1,728,000 years

Mahā Yug: 4,320,000 years (Adding the four yugas)

Kalp: 4,320,000,000 years (1000 Mahā Yug = 1 day of Brahma)

Now, having understood the length of chatur yuga, we can calculate the length of Brahma’s day and night. Shri Krishna says that one day of Lord Brahma equals one thousand yugaas. The interpretation of the word yuga here is traditionally taken to mean a chatur- yuga. So then, a day of Brahma equals one thousand times 4.32 million, which is 4.32 billion years. This is also the length of one night of Lord Brahma.

Now what is the present age of Brahmāji. In all the saṅkalpa we say: Brahmāji is running 51st year. He is more than 50 years; One hair must have turned grey;

Brahmanaḥ parārdvaya kālē, parārdham means 50 years; Brahmāji has got parārda dvayam means, two fifty years, can he say 2 fifty years he has got; and now dvithiya parardhe; and this the first day of the 51st years; and on the first

day he has got 2000 years; and this is the 27 or 28th chaturyugā; ashtavimsati tame, kaliyuge; in the 2000 chaturyugās, 28th chaturyugā is over. Now you can calculate how many chaturyugās more he has to cross; to reach the total; Of these 2000 chaturyugās; 1000 chaturyugā Brahmāji keeps awake; and another 1000 chaturyugā is asleep.

Let us know dig deeper into the symbolic meaning of this shloka. There are two aspects we need to look at. First, this shloka re-emphasizes that every action we perform always bears fruit, but not necessarily in the current lifetime.

We may try and try very hard, but the result of our action may not show up in this lifetime, it may bear fruit in another lifetime. Alternatively, we may sometimes get into situations that we think we do not deserve. These could be favourable situations (an unexpected financial windfall) or unfavourable situations (a natural disaster). These types of results are due to actions we have performed in a prior lifetime.

The second aspect is to do with the cultivation of dispassion or vairagya towards this world. We perform actions in this world not just for immediate gain, but also to leave behind a legacy, leave behind something that future generations will remember us by. It could be wealth, power, prestige and so on. But in effect, Shri Krishna tells us that nothing will last forever. Everything will eventually end, if not now then certainly in 4.32 billion years. So, if this is going to be the case, it is better to cultivate dispassion right now so that we can proceed spiritually.

Brhaman and brhama both are different identities. Brahaman is nirgun, ultimate goal or supreme power. Brahma is also a soul, who has reached tremendously elevated consciousness. Thus, God has given him the position of Brahma, to discharge the duties as a creator on God's behalf. But like all other living creatures, Brahma is also under the cycle of life and death. However, at the end of his tenure, he is liberated and goes to the Abode of God. Sometimes, at the creation of the world, when God does not find any eligible souls for the position of Brahma, God Himself becomes Brahma.

How exactly does the universe come into being and dissolve? This is explained next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक मे मृत्यु लोक से ब्रह्म लोक तक सभी पुनरावर्तन शील बताए गए। केवल मात्र आत्मा का परमात्मा में विलय ही जन्म मरण से मुक्ति है। ब्रह्म लोक भी अनन्त नहीं है क्योंकि वो भी निर्मित है अतः यह श्लोक ब्रह्मांड के सर्वाधिक अवधि वाले लोक की गणना करते हुए कहता है कलियुग, त्रेता, द्वापर एवम सतयुग मिला कर एक महायुग होता है। ऐसे एक हजार महायुग का समय ब्रह्मा का एक दिन है। ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की है। सृष्टि की रचना ब्रह्मा दिन में करते है एवम रात्रि में इस का नाश हो जाता है। मनुष्य वर्ष से यह एक दिन 4 अरब 32 करोड़ वर्ष का है। असीमित होते हुए भी जो सीमित है जिस की गणना की जा सकती है, वह ब्रह्म लोक को प्राप्त करने के बाद भी पुरावर्तन से मुक्ति नही है।

भगवान श्री कृष्ण कहते है काल की मर्यादा को समझने वाले जानते है कि हर जीव अपनी अपनी योनि में जन्म या प्रवेश के साथ ही अपने अंत को तय कर लेता है। यह बात अलग है कि कौन कितने समय उस काल मे स्थिर या रहेगा किन्तु प्रत्येक के काल की गणना निश्चित है। छोटे छोटे कृमि कुछ ही समय के लिये जन्म ले कर काल के गर्त में चले जाते है और अन्य प्राणी अपनी अपनी आयु के अनुसार। इसी प्रकार जड़ पदार्थ, देवता, इंद्रलोक, यहां तक ब्रह्मलोक भी काल की गणना से बाहर नही है। यह काल असीमित एवम अमर्यातित है किंतु इस काल मे निर्मित हर जीव, जड़, लोक, युग सभी सीमित एवम मर्यादित है।

इस लिये तत्वविद पुरुष ही इस काल के तत्व को जानता है।

जब भी परमात्मा अपनी चेतना को विस्मरण कर जड़ता कर के किसी भी व्यक्त रूप में प्रकट होता है तभी काल की मर्यादा रूप में बंधन में बंधायमान हो जाता है। जो भी काल के साथ बन्धायमान हुआ उस के काल की अवधि कितनी भी दिर्घ क्यों न हो, अवधि वाला होने से अपने सम्बन्ध कर के सब को नष्ट करता ही है। फिर यही काल के साथ मिल कर नष्ट वस्तु का रूपांतर भी तय है। यही आवागमन या जन्म मरण का चक्र है यह तब तक चलता है जब तक परमात्मा का व्यक्त स्वरूप परमात्मा के अव्यक्त स्वरूप में पुनः जा कर अव्यक्तभाव प्राप्त नही कर लेता।

ब्रह्म और ब्रह्मा यह दो शब्द गीता में निर्गुण और सगुण परमात्मा के स्वरूप है। सगुण ब्रह्म जब संसार की रचना करता है तो वह नित्य नही हो सकती, उस का काल कितना भी दीर्घ हो, किन्तु किसी न किसी सीमा में सीमित अवश्य होगा। आज की गणना के अनुसार ब्रह्मा की आयु 51 वर्ष है। यानि 100 वर्ष की ब्रह्मा की आयु में अर्धशताब्दि पूर्ण हो चुकी है, फिर भी यह यात्रा अनन्त ही है। सगुण परमात्मा में व्यक्त एवम अव्यक्त प्रकृति का स्वरूप होता है। व्यक्त जिसे हम इन्द्रियों से देख या प्रमाणित कर सकते है और अव्यक्त वह जो इन्द्रियों से नही जान सकते जैसी मन, बुद्धि इच्छाये आदि। ब्रह्मा अव्यक्त प्रकृति का स्वरूप है, जो हम आगे पढ़ेंगे।

ब्रह्माजीके दिन और रातको लेकर जो सर्ग और प्रलय होते हैं उसका वर्णन अब आगेके दो श्लोकोंमें पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.17।।

।।काल की गणना गीता में बताए अनुसार 'भारत' एवम मनुस्मृति में है जिसे गीता में बताया गया है।। गीता विशेष 8.17 ।।

1) पृथ्वी का अपनी धुरी पर एक चक्र एक दिन एवम एक रात होता है।

2) सौर मंडल में पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर का एक चक्र एक वर्ष माना गया है।

3) हमारा एक वर्ष देवताओ का एक दिन माना गया है। इस प्रकार 360 वर्ष का एक दिव्य वर्ष कहलाता है।

4) ऐसे 12 हजार दिव्य वर्षों का एक दिव्य युग होता है जिसे महायुग और चतुर्युगी भी कहते है।

5) इस प्रकार से गणना करने से जिन चार युगों की हिन्दू धर्म मे बात की जाती है उन का परिमाण मनुष्य के वर्षो के हिसाब से इस प्रकार होगा।

क) कलि युग 432000 वर्ष

ख) द्वापरयुग 864000 वर्ष (कलियुग से दुगना)

ग) त्रेतायुग- 1216000 वर्ष (कलि युग से तिगुना)

घ) सत्ययुग- 1728000 वर्ष (कलियुग से चौगुना)

कुल जोड़ - 43,20,000 वर्ष

अर्थात चतुर्युगी या दिव्य युग की गणना 43,20,000 वर्ष होगी।

6) ऐसे हजार दिव्य युग का ब्रह्मा का एक दिन होता है। अर्थात ब्रह्मा का एक दिन 4,32,00,00,000 (चार अरब 32 करोड़ वर्ष) का होता है। ब्रह्मा के एक दिन को कल्प या सर्ग भी कहते है एवम रात्रि को प्रलय भी कहते है।

परमात्मा अपने सूक्ष्म रूप से अर्थात अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में प्रकट होता है जिसे ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना माना गया है यह ही ब्रह्मा का दिन है, कल्प है एवम जब परमात्मा पुनः अपने को अव्यक्त स्वरूप में समेट लेता है तो समस्त सृष्टि नष्ट हो कर परमात्मा में विलय हो जाती है, जिसे ब्रह्मा की रात्रि काल, प्रलय भी कहा गया है।

परमात्मा का अव्यक्त से व्यक्त होना या व्यक्त से पुनः अव्यक्त होना किसी भी धर्म, विचार धारा में स्पष्ट नही है क्यों परमात्मा अपने अव्यक्त स्वरूप से व्यक्त स्वरूप को प्रकट होता है और पुनः व्यक्त से अव्यक्त को प्राप्त करता है। जितने भी धर्म, संस्कृति, विचारधारा है वो परमात्मा के व्यक्त रूप का दर्शन शास्त्र मात्र है। गीता का दर्शन शास्त्र भी परमात्मा के व्यक्त स्वरूप का दर्शन शास्त्र ही है।

7) इस प्रकार ब्रह्मा के सौ वर्ष की ब्रह्मलोक की आयु है। अर्थात असीमित हो कर भी ब्रह्मलोक अनित्य ही है।

मनुस्मृति में काल की यह गणना कोई काल्पनिक या मिथक नही है। आज जब 'GOD PARTICAL' एवम बिंग बैंग के सिंद्धान्त पर कृतिम ब्रह्मांड की रचना का प्रयास अनुसंधानशाला में किया जा रहा है तो वैज्ञानिक भी काल की गणना कर रहे है जो इस से मिलती है। यह एक रोचक विषय है, जो गूगल पर सर्च करने से काफी साहित्य के रूप में उपलब्ध है।

।। हरि ॐ तत सत ।। विशेष 8.17 ।।

।। गीता के श्लोक 8.17 की व्याख्या कुछ अलग ढंग से स्वामी चिन्मयानंद जी की है उसे भी प्रस्तुत करता हूँ।।

आइन्स्टीन के सापेक्षवाद ने एक रहस्योद्घाटन किया है जो कि अब पश्चिमी देशों में स्वीकृत हो चुका है। इस सिद्धांत के अनुसार देश और काल की कल्पनाएं उन व्यक्तिगत तत्त्वों पर निर्भर करती हैं जो इन के मापदण्ड के नियामक होते हैं। जब मन क्षुब्ध होता है तब समय भार मालूम पड़ता है और मन्दगति से बीत रहा प्रतीत होता है जैसे जब कोई व्यक्ति किसी की व्याकुलता या अत्यन्त उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा होता है किन्तु उसी व्यक्ति को समय उड़ता हुआ प्रतीत होता है जब वह विश्राम और सुखदायक परिस्थितियों में बैठा हो जहाँ उसका मनोरंजन हो रहा हो। ताश खेलने में मग्न पुरुष को रात कैसे व्यतीत हो गई इसका भान नहीं रहता और उषाकाल की सूर्य की किरणों को खिड़की में से आते देखकर उसे आश्चर्य होता है। मन के प्रतिकूल कार्य करना पड़े अथवा शरीर में पीड़ा हो तो एकएक क्षण युगों के समान जान पड़ता है। निद्रावस्था के एक अखण्ड अनुभव में काल की कोई कल्पना नहीं होती।उपर्युक्त घटनाओं के निरीक्षण से हिन्दू दार्शनिक इस युक्तियुक्त निष्कर्ष पर पहुँचे कि वास्तव में जिसे हम काल कहते हैं वह दो भिन्न भिन्न अनुभवों के मध्य के अन्तराल की गणना है। मन को क्षुब्ध करने वाले अनुभवों की संख्या जितनी ही अधिक होगी समय की गति मन्द अनुभव होगी। एक ही अनुभव यदि दीर्घकाल तक बना रहे तो समय तीव्र गति से व्यतीत होगा। केवल एक ही अनुभव में काल का अनुभव नहीं होता जैसे एक ही बिन्दु पर दूरी की गणना नहीं होती क्योंकि दो बिन्दुओं के मध्य अन्तराल की गणना से ही दूरी नापी जा सकती है। इस सिद्धांत के आधार पर काल की गणना करते हुए पौराणिक कवियों ने जो कहा कि देवताओं की घड़ियों के डायल बड़े होते हैं तो उन का कथन उपयुक्त ही है उपनिषदों में भी आनन्द की मीमांसा की गई है जिस में एक मानवीय आनन्द को इकाई मानकर ब्रह्माजी तक के देवों को प्राप्त आनन्द की मात्रा की गणना की गई है। मर्त्यलोक से उच्चतर विभिन्न लोकों में आनन्द की मात्रा में वृद्धि उन लोकों में प्राप्त होने वाली मन की शान्ति एवं समता के तारतम्य को दर्शाती है।इस श्लोक में कहा गया है कि ब्रह्माजी का एक दिन एक सहस्र युगों का होता है तथा एक रात्रि भी उतनी ही दीर्घ होती है। युग से तात्पर्य कल्प से है। कालविदों ने जो यह गणना की है वह हमारे 365 दिनों के एक वर्ष की गणना के अनुसार है। चार युगों का एक कल्प होता है और ब्रह्माजी का एक दिन एक सहस्र कल्पों का माना गया है। जैसे व्यष्टि इकाइयाँ होंगी वैसे ही समष्टि होगी। व्यष्टि (एक) मन स्वेच्छा से अपनी सृष्टि की रचना करता है और उसका पोषण भी करता है। तत्पश्चात् उसे नष्ट कर देता है केवल पुनः नई सृष्टि रचने के लिए। सृष्टि और लय का यह निरन्तर कार्य मनुष्य केवल दिन में अर्थात् अपनी जाग्रत् अवस्था में ही करता है। इसी प्रकार यह माना जाता है कि समष्टि मन अर्थात् ब्रह्मा जी इस चराचर सृष्टि की रचना केवल उनकी जाग्रत् अवस्था में करते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।। गीता विशेष 8.17 (2) ।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.18॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥

"avyaktād vyaktayaḥ sarvāḥ,
prabhavanty ahar- āgame..।
rātry- āgame pralīyante,
tatraivāvyakta-saḿjñake"..।।

भावार्थ:

ब्रह्मा के दिन की शुरूआत में सभी जीव उस अव्यक्त से प्रकट होते है और रात्रि की शुरूआत में पुन: अव्यक्त में ही विलीन हो जाते हैं, उस अव्यक्त को ही ब्रह्म के नाम से जाना जाता है। (१८)

Meaning:

With the start of day, the entire manifest (universe) is produced from the unmanifest. With the start of night, it is dissolved into that which is called the unmanifest.

Explanation:

Shri Krishna explains the process of cosmic creation in this shloka. When the day of Lord Brahma begins, the entire universe comprising all living and non-living entities wakes up and begins to act. This process continues until the end of his day. Then, the whole universe goes back into the same unmanifest state that it sprung from. Alternatively, the whole universe is born out of Lord Brahma (the unmanifest) and goes back into him.

The entire universe dissolves at the end of Brahma's life of 100 years (311.04 trillion earth years). The whole material creation winds up. The pañch-mahābhūta merge into the pañch- tanmātrās, the pañch- tanmātrās merge into ahankār, ahankār merges into mahān, and mahān merges into prakṛiti. Prakṛiti is the subtle form of Maya, the material energy of God. Maya now takes up her primordial form. She goes back into the body of the Supreme Lord, Maha Vishnu. This great dissolution is called prākṛit pralaya, or mahāpralaya.

We can understand this shloka using the analogy of the movie theatre from the beginning of this shloka. The entire animated movie lies unmanifest in the reel of film. When the movie begins, someone loads the film into the projector and turns the projector on. Then, the bright white movie screen comes alive with all the characters in the movie. When the reel of film ends, all the movie characters are “dissolved” from the white screen. This process is repeated next time, and so on and so forth.

Shukdev Paramhans narrated the Shrimad Bhagavatam to Parikshit, he stated that Brahma creates these worlds similar to a child playing with his toys. A child builds structures with his toys during the day and pulls them apart before going to bed at night. Similarly, when Brahma wakes up, he creates the planetary systems and their life forms and dissolves them before going to sleep.

Now let us examine the implications. The universe is never really destroyed. It goes into a state of suspended animation, only to be “un-frozen” when the next day of Lord Brahma begins. This is consistent with the law of conservation of energy and matter. Neither energy nor matter is created or destroyed. They just transform from one state to another.

If we know this, and if we also know that every action that we perform always yields a result sooner or later, we realize that the universe works on a set of well-defined laws. Nothing is random, everything is an effect of some earlier cause. Therefore, we can begin to develop the right set of expectations towards the world. Then, while performing actions in a spirit of karma yoga, we will know that only performance of actions is in our hand. The universe, with its set of in-built laws, will take care of the rest. There is no room for worry.

Now, do the living and non-living being have a choice in this process of creation and dissolution? We shall see in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा।।

सातवें अध्याय में अपरा एवम परा प्रकृति को हम ने पढ़ा था। अपरा प्रकृति ही ब्रह्मा जी का व्यक्त रूप है।

दिन के आरम्भ काल का नाम अहरागम है ब्रह्मा के दिन के आरम्भकाल में अर्थात् ब्रह्मा के प्रबोधकाल में अव्यक्त से -- प्रजापति की निद्रावस्था से समस्त व्यक्तियाँ स्थावर जङ्गमरूप समस्त प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, प्रकट होती हैं। जो व्यक्त प्रकट होती है उस का नाम व्यक्ति है तथा रात्रि के आने पर - ब्रह्मा

के शयन करने के समस्त उस पूर्वोक्त अव्यक्त नामक प्रजापति की निद्रावस्था में ही समस्त प्राणी लीन हो जाते हैं।

ब्रह्मा दिन में अपनी जागृत अवस्था में ग्रह प्रणालियों और उनके जीवन रूपों की रचना करते है और रात्रि में सोने से पूर्व उन्हें नष्ट कर देते हैं। ब्रह्मा के जीवन के 100 वर्षों के अन्त में संपूर्ण ब्रह्माण्ड का संहार हो जाता है। उस समय समस्त भौतिक सृष्टि का अंत हो जाता है। पंच महाभूतों का पंच तन्मात्राओं में विलय और पंच तन्मात्राओं का अहंकार और अहंकार का विलय महान में तथा महान् का विलय प्रकृति में हो जाता है। प्रकृति भौतिक शक्ति माया का सूक्ष्म रूप है तब माया अपनी मौलिक अवस्था में महा विष्णु परमात्मा के शरीर में जाकर स्थित हो जाती है। इसे प्रकृति प्रलय और या महाप्रलय कहते हैं जब महा विष्णु पुनः सृष्टि सृजन करने की इच्छा करते हैं तब वे प्रकृति के रूप में मायाशक्ति शक्ति पर दृष्टि डालते हैं और वह केवल उनके दृष्टि डालने से विकसित होती है। प्रकृति से महान और महान से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार से पंचतन्मात्राएँ और पंचतन्मात्राओं से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार से अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि होती हैं। और उसी में विलीन भी होती है।

आज के युग के वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार आकाशगंगा में 100 करोड़ तारे हैं। एक आकाश गंगा के समान ब्रह्माण्ड में 1 करोड़ तारा समूह हैं। वेदों के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड के समान विभिन्न आकार के अनन्त ब्रह्माण्ड भी अस्तित्व में हैं। हर समय जब महाविष्णु श्वास लेते हैं तब उनके शरीर के छिद्रों से असंख्य ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं और जब वे श्वास बाहर छोड़ते हैं तब सभी ब्रह्माण्डों का संहार हो जाता है। इस प्रकार से ब्रह्मा के 100 वर्षों का जीवन महाविष्णु की एक श्वास के बराबर है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का एक ब्रह्मा, विष्णु और शंकर होता है। इस प्रकार असंख्य ब्रह्माण्डों में असंख्य ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हैं। सभी ब्रह्माण्डों के समस्त विष्णु, महाविष्णु का विस्तार हैं।

जीवकृत सृष्टि अर्थात् मैं और मेरापन को लेकर जीव की जो सृष्टि है जीव के नींद से जगने पर वह सृष्टि जीव से ही पैदा होती है और नींद के आ जाने पर वह सृष्टि जीव में ही लीन हो जाती है। ऐसे ही जो यह स्थूल समष्टि सृष्टि दीखती है वह सब की सब ब्रह्माजी के जगने पर उन के सूक्ष्म शरीर से अर्थात् प्रकृति से पैदा होती है और ब्रह्माजी के सोने पर उन के सूक्ष्म शरीर में ही लीन हो जाती है। तात्पर्य यह हुआ कि ब्रह्माजी के जगने पर तो सर्ग होता है और ब्रह्माजी के सोने पर प्रलय होता है।

व्यक्त स्वरूप से आश्रय इंद्रियाओ से जिन्हें जाना जा सके। अतएव देव, मनुष्य, पितर, पशु, पक्षी, नदी, नाले पहाड़ जितने भी अपरा प्रकृति से उत्पन्न भूत है वो समस्त अपरा प्रकृति का व्यक्त स्वरूप है।

ब्रह्मा जी का एक दिन 4 अरब 32 करोड़ वर्ष का है। इस को कल्प या सर्ग भी कहते है। अतः ऐसा माना जाता है कि अपरा प्रकृति व्यक्त रूप में ब्रह्मा जी के दिन के समय व्यक्त होती है एवम परा प्रकृति उस मे प्रवेश करती है। ब्रह्मा जी के रात्रि के समय यह अपरा प्रकृति पूर्णतयः नष्ट हो कर अव्यक्त रूप में सूक्ष्म हो जाती है जिसे हम प्रलय कहते है। अपरा प्रकृति के सूक्ष्म होने पर भी परा प्रकृति अर्थात जीव मुक्त नही होता एवम ब्रह्म लोक में ही रहता है। जो दिन में अपरा प्रकृति के व्यक्त होने पर पुनः उस मे प्रवेश पाता है।

इन सब की तुलना हम सिनेमा घर मे चलने वाली रील से करे तो पिक्चर समाप्त होने पर सब पात्र रील में सिमिट जाते है और शो शुरू होने पर रील से प्रकट होने लगते है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतम् में शुकदेव परीक्षित को अवगत कराते हैं कि जिस प्रकार से बालक दिन में खिलौने से संरचनाएँ बनाता है और उन्हें सोने से पहले नष्ट कर देता है।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से ब्रह्मा का एक दिन एक हजार चतुर्युग का है। चतुर्युग में प्रत्येक युग का काल पृथ्वी के दिन रात की गणना से किये है। किंतु पृथ्वी पूर्ण ब्रह्मांड में सूक्ष्म बिंदु के बराबर भी नही। पूरे ब्रह्मांड में न जाने कितनी आकाश गंगा एवम अगिनत सौर मंडल होंगे। सभी ग्रह अपने अपने धुरी में घूमते होंगे। उस परिमाण में यह सब सत्य हो सकता है। किंतु पृथ्वी की अपनी धुरी में हम यह भी मान सकते है एक ही युग मे चतुर्युग एक से ज्यादा होंगे। क्योंकि अभी हमे बताया जा रहा है कि कलयुग चल रहा है। इस से पहले द्वापरयुग था जिस में इस गीता की रचना हुई और महाभारत को रचने वाले व्यास ऋषि महाभारत काल के थे। हमे रामायण काल के कुछ प्रमाण मिल रहे है जिन की गणना 8 से 9 हजार साल की है। रामायण काल त्रेता युग था। अतः त्रेता से कलयुग 9 हजार साल ही ज्यादा से ज्यादा होगा जिस में द्वापरयुग आ कर गुजर गया। गीता भी 5000 से 5500 वर्ष पूर्व की मानी जाती है। गणना में कलियुग की आयु को देखते हुए हम यह मान कर चल सकते है एक युग मे भी कई चतुर्युग होते होंगे। जब तक संपूर्ण सृष्टि को समझ नही पाते, तब तक काल की गणना आज के वैज्ञानिक कैलेंडर से करना विज्ञान की दृष्टि से संदेह पैदा कर सकता है, किंतु सौर मंडल, आकाश गंगा और ब्रह्मांड की आयु जो आज के विज्ञान से नापी जाती है, वह भी इसी प्रकार से ही मिलती जुलती है।

वस्तुतः ब्रह्मा से अपरा प्रकृति के प्रकट होने से लेकर प्रलय तक का समय मानव जीवन के आधार पर अत्यंत लंबा है, किन्तु ब्रह्मा जी के अनुसार यह एक दिन और रात ही है। ब्रह्मा जी की आयु 100 वर्ष है, अतः जीव ब्रह्म लोक भी प्राप्त कर ले तो भी वह मुक्त नही है, उसे सर्ग और विसर्ग में जन्म-मृत्यु को प्राप्त करना ही होता है। जीव का मोक्ष तो परब्रह्म में विलीन होने से ही होगा।

जीव को इस जन्म मरण से मुक्ति तभी मिल सकती है जब वो सम्पूर्ण रूप से परमात्मा के अव्यक्त स्वरूप को प्राप्त हो। जिसे हम आगे पढेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।।8.18।।

॥ श्रीमद्‍भगवद्‍गीता ॥ 8.19॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥

"bhūta-grāmaḥ sa evāyaḿ,
bhūtvā bhūtvā pralīyate..।
rātry-āgame 'vaśaḥ pārtha,
prabhavaty ahar-āgame"..।।

भावार्थ:

हे पृथापुत्र! वही यह समस्त जीवों का समूह बार-बार उत्पन्न और विलीन होता रहता है, ब्रह्मा की रात्रि के आने पर विलीन हो जाता है और दिन के आने पर स्वत: ही प्रकट हो जाता है। (१९)

Meaning:

That (same) collection of beings, which was created repeatedly, helplessly dissolves during the night, O Paartha, and is (again) created during the day.

Explanation:

From the 15th verse of this 8th chapter, up to 22nd verse Lord Krishna is comparing two forms of human goals. One attainable through karma; varieties of actions, loukika and vaidika. Scriptural and non-scriptural; secular and religious activities. They can give one set of results and the other type of goal attainable through Niṣkāma upāsana.

And Krishna wants to point out that karma phalam is finite and upāsana phalam is infinite. We are making a comparative study between karma and upāsana And Krishna wants to establish that if one has to choose between karma phalam and upāsana phalam, upāsana phalam is superior to karma phalam. Therefore, here we should remember, Niṣkāma upāsana phalam as krama mukthi or Īśvara prāpthi; Īśvara or Lord comes under infinite result.

While talking about the finite of karma phalam or material results, he is taking up the highest goal possible, within time and space. The highest goal possible within time and space he wants to study, and he wants to point out that even that highest goal happens to be finite in nature. And what is that Brahma lōkā prāpthiḥ; or getting the post of Brahmāji; and Krishna accepts that Brahmā has got a very very long life; I admit. But he wants to point out later, that even the longest life will end one day, therefore it comes under parichinna phalam only. For this purpose, He talks about the duration of Brahmāji's life.

Previously, we learned about the process of cosmic creation, where all the living and non- living beings in the universe become manifest at the beginning of the day of Brahma. Now, Shri Krishna elaborates on the dissolution aspect. He says that all those beings go into an unmanifest or “frozen” state during the night of Lord Brahma. The very same beings become manifest or “un-frozen” again, when the day of Lord Brahma begins.

As we saw earlier, nothing is ever created or destroyed. The very same set of beings becomes manifest and unmanifest. The total number of “beings” in the universe remains the same. Those who die are “born” into a different form. Forms change but the total amount of universal “stuff” remains the same. It is said that there are 8.4 million species, which are nothing but forms. The movie ends, the reel is rewound, and it begins all over again, on and on, without any end in sight.

Now, here is one word in this shloka that deserves further attention. It is “avashaha” which means helplessly. Shri Krishna says that all beings, even if they are plants, animals, minerals or humans are helplessly stuck in this wheel of birth and rebirth, otherwise known as the wheel of samsaara. If they do not actively pursue a spiritual path, whatever that path may be, they will never come out of this cycle.

Most of us get frustrated if we get stuck in an elevator for more than a few minutes. Imagine how frustrated we should get if we find out that we are stuck somewhere for an infinite amount of time. So how exactly do we escape from this situation? We shall see in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अध्याय 8 में श्लोक 15 से 22 तक हम कर्म फल मुक्ति और जीव मुक्ति को समझ रहे है। इसलिए पूर्व में जो सांख्य, ज्ञान, कर्म, भक्ति योग की बाते कही गई थी, उस के परिणाम को समझना भी चाहिए।

प्रकृति का विस्तार 14 लोकों में ब्रह्म लोक तक है, इसलिए मृत्यु के पश्चात यदि जीव स्वर्ग से ब्रह्म लोक कही भी जाए, उसे काल और स्थान के अनुसार अपने कर्म फलों से मुक्ति हेतु पुनः इस मृत्यु लोक में आना होता है। किंतु कर्म फलों से मुक्ति होने से जन्म - मरण के लिए ब्रह्म लोक में इतना अधिक समय मिलता है कि जीव जीवमुक्ति को भी प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मा दिन में सृजन कार्य करते है और रात्रि में विश्राम। यह ही इस ब्रह्मलोक का रहस्य है। इस से उत्पन्न ऐश्वर्यगामी, भोग, भोगोपकरण और भोगस्थान से कभी न कभी नष्ट हो जाते है। ब्रह्मा, इंद्रलोक, आदि भोग स्थान है, शरीर भोगोपकरण है और उस के साथ सुख भोगना भोग है।

अनादिकाल से जन्म मरण के चक्कर में पड़ा हुआ यह प्राणि समुदाय वही है जो कि साक्षात् मेरा अंश मेरा स्वरूप है। मेरा सनातन अंश होने से यह नित्य है। सर्ग और प्रलय तथा महासर्ग और महाप्रलय में भी यही था और आगे भी यही रहेगा। इस का न कभी अभाव हुआ है और न आगे कभी इस का अभाव होगा। तात्पर्य है कि यह अविनाशी है इस का कभी विनाश नहीं होता। परन्तु भूल से यह प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध मान लेता है। प्राकृत पदार्थ (शरीर आदि) तो बदलते रहते हैं उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं पर यह उनके सम्बन्ध को पकड़े रहता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि सम्बन्धी (सांसारिकपदार्थ)

तो नहीं रहते पर उन का सम्बन्ध रहता है क्योंकि उस सम्बन्ध को स्वयं ने पकड़ा है। अतः यह स्वयं जब तक उस सम्बन्ध को नहीं छोड़ता तब तक उस को दूसरा कोई छुड़ा नहीं सकता। उस सम्बन्ध को छोड़ने में यह स्वतन्त्र है सबल है। वास्तव में यह उस सम्बन्ध को रखने में सदा परतन्त्र है क्योंकि वे पदार्थ तो हरदम बदलते रहते हैं पर यह नया नया सम्बन्ध पकड़ता रहता है।

वेदों में चार प्रकार की प्रलय का उल्लेख किया गया है-

नित्य प्रलय: हमारी चेतना की प्रतिदिन की प्रलय है तब आती है जब हम गहन निद्रा में होते हैं।

नैमित्तिक प्रलयः यह प्रलय महालोक तक के सभी लोकों में ब्रह्मा का दिन समाप्त होने पर आती है। उस समय इन लोकों में रहने वाली आत्माएँ अव्यक्त हो जाती हैं। वे प्रसुप्त जीवंत अवस्था में महा विष्णु के उदर में समा जाती हैं। जब ब्रह्मा इन लोकों की सृष्टि करते हैं तब वे अपने पूर्व कर्मों के अनुसार जन्म लेती हैं।

महाप्रलयः ब्रह्मा के जीवनकाल की समाप्ति पर सभी ब्रह्माण्डों में होने वाले संहार को महाप्रलय कहा जाता है। उस समय ब्रह्माण्ड की सभी जीवात्माएँ महाविष्णु के उदर में प्रसुप्त जीवंत अवस्था में चली जाती हैं। उनके स्थूल और सूक्ष्म शरीर का विनाश हो जाता है और उनका कारण शरीर शेष रहता है। जब सृष्टि के अगले चक्र का सृजन होता है तब उनके कारण शरीर में संचित उनके कर्मों और संस्कारों के अनुसार उन्हें पुनः जन्म मिलता है।

अत्यांतिक प्रलयः जब आत्मा अंततः भगवान को प्राप्त कर लेती है तब वह सदा के लिए जीवन और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाती है। अत्यांतिक प्रलय माया के बंधनों का विनाश है जो आत्मा को नित्य बाँधे रखती थी।

अव्यक्त से इस प्रकार व्यक्त होना ही दर्शनशास्त्र की भाषा में सृष्टि है।सृष्टि की प्रक्रिया को इस प्रकार ठीक से समझ लेने पर सम्पूर्ण ब्रह्मांड की सृष्टि और प्रलय को भी हम सरलता से समझ सकेंगे। समष्टि मन (ब्रह्माजी) अपने सहस्युगावधि के दिन की जाग्रत् अवस्था में सम्पूर्ण अव्यक्त सृष्टि को व्यक्त करता है और रात्रि के आगमन पर भूतमात्र अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण इस पर विशेष बल देते हुये कहते हैं कि **वही भूतग्राम पुनः पुनः अवश हुआ उत्पन्न और लीन होता है।** अर्थात् प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में नवीन जीवों की उत्पत्ति नहीं होती। इस कथन से हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि किस प्रकार मनुष्य अपने ही विचारों एवं भावनाओं के बन्धन में आ जाता है ऐसा कभी नहीं हो सकता कि कोई पशु प्रवृत्ति का व्यक्ति जो सतत विषयोपभोग का जीवन जीता है और अपनी वासना पूर्ति के लिए निर्मम और क्रूर कर्म करता है रातों रात सर्व शुभ गुण सम्पन्न व्यक्ति बन जाय।

यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक के कि ब्रह्मा के दिन के सृष्टिकाल में हर जीव अपनी अपनी आयु के अनुसार अपने कर्मो के फलो कीभोगता है एवम उस के अनुसार विभिन्न लोको से अपने पुण्य कर्मों के फल समाप्त होने पर जन्म लेता है। इस प्रकार ब्रह्मा के दिन में उस के अनेक जन्म-मरण के चक्र हो जाते है और यह चक्र चलता ही रहता है जब तक वो ब्रह्म लोक को प्राप्त न कर ले या फिर पूर्ण रूप से मुक्त हो कर परमात्मा में विलय हो जाये।

किन्तु पुण्य कर्मों से नित्य ब्रह्मलोकवास प्राप्त भी हो जाय, तो भी प्रलय काल मे ब्रह्मलोक ही का नाश हो जाने से फिर नए कल्प के आरंभ में प्राणियों का जन्म लेना नही छूटता।

ब्रह्मा की आयु 100 वर्ष है उस के बाद महाप्रलय से ब्रह्मा का भी नाश हो जाता है किंतु इस के बाद भी पुनः ब्रह्मा का जन्म होता है और सृष्टि की रचना का कार्य शुरू हो जाता है।

यह कुछ कुछ ऐसा ही है सिनेमा हॉल में एक पिक्चर होने के बाद उसी को बार बार दिखाया जाता है और उस के मिटने के बाद दूसरी पिक्चर दिखाई जाती है। बार बार एक ही पिक्चर देखना प्रताड़ित करना लगता है वैसे ही अवश हो बार बार जन्म मरण लेना है।

आधुनिक युग मे यह सब बातें बेमानी सी लगती है, मनुष्य का अज्ञान का ज्ञान ही इस का प्रमुख कारण है, जिस के कारण वह संसार अपने होने और न होने तक ही सीमित रखता है। अनन्त वर्षो के ऋषियों के ब्रह्मांड के चिंतन हो, जब वह प्रमाण के आधार पर भौतिक विज्ञान से खोजता है, तो उसे मृत्यु से पहले और बाद की बाते, समझ मे नही आती, किन्तु जब संकट, तकलीफ या अंत आने लगता है, तो वह अपने जन्म की उपयोगिता एवम नष्ट किये समय को पहचान पाता है। आधुनिक विज्ञान भी इसी रहस्य को खोज रहा है। अफ्रीका में पाई जाने वाली लंगफिश के बारे में कई लोगो ने पढ़ा होगा जो पानी सूखने पर अपने आप को एक विशेष आवरण में ढक लेती है, फिर चाहे उस मिट्टी की, जिस में वह दफ़न है, दीवार भी क्यों न बना दी जाए, वह उस अवस्था में चार साल तक रह सकती है और जब भी वर्षा होती है, वह पुनः जीवित हो जाती है। इसलिए प्रलय में जीव बीज स्वरूप में रह जाता है और वापसी में पुनः प्रकट हो जाता है।

अनित्य संसार में जन्म-मरण के पुनरावृति का अनन्त दुष्चक्र एवम इस लोक से उस लोक में भटकने का वर्णन करके अब आगे के श्लोक में जीवों के प्रापणीय परमात्मा की महिमा का विशेष वर्णन पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।।8.19।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.20॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

"paras tasmāt tu bhāvo 'nyo,
'vyakto 'vyaktāt sanātanaḥ..।
yaḥ sa sarveṣu bhūteṣu,
naśyatsu na vinaśyati"..।।

भावार्थ:

लेकिन उस अव्यक्त ब्रह्म के अतिरिक्त शाश्वत (अनादि-अनन्त) परम-अव्यक्त परब्रह्म है, वह परब्रह्म सभी जीवों के नाश होने पर भी कभी नष्ट नहीं होता है। (२०)

Meaning:

But there exists another supreme, timeless unmanifest, beyond that (other) unmanifest, which, after destruction of all beings, is not destroyed.

Explanation:

Previously, Shri Krishna spoke about the endless cycle of creation and dissolution of the universe. All living and non-living beings go into a state of suspended animation for 4.32 billion years, after which they come back into manifest mode for another 4.32 billion years. But there is one more thing. There are a select few beings that escape this endless cycle. They are the ones who are liberated.

He now starts describing the eternal spiritual realm, which He says is beyond these material worlds and everlasting. The spiritual realm does not dissolute along with the material realms in the cycle of creation. The eternal world is created by Yogmaya, the spiritual energy of God. Later in verse 10.42, He reveals that only one-fourth of His entire creation is in the material dimension, and the remaining three-fourth is the eternal spiritual world.

Up to the previous verse, Krishna has talked about all the finite result, which will come under the field of matter; and any result which falls within matter is bound by time and therefore it will have two conditions; manifest and unmanifest. In Sanskrit, it is called manifest matter and unmanifest matter, which you may call energy. So energy becomes matter, and matter becomes energy and again energy becomes matter. Now Krishna says: there is another goal, which a human being can achieve, which is beyond both these. Both these means what? the manifest matter and the unmanifest matter.

Karya prapañcha and kāraṇa prapañchaḥ; vyakta prapañchaḥand avykta prapañchaḥ; the avyakta or kāraṇa prapañcha is otherwise called Māya; Therefore, Māya becomes the world, the world becomes Māya; world is also matter, Māya is also matter, and both of them exist within time. And Krishna says there is another thing which is beyond both, which Krishna calls unmanifest No.2. So manifest matter, unmanifest matter, unmanifest matter, we will call unmanifest No.1 and he says other than these two, there is another one, which is unmanifest No.2, and that is nothing but the consciousness

principle. That consciousness which is the witness of the unmanifest condition of matter, as well as the manifest condition of matter; and that witness consciousness does not fall within the witnessed field. because the observer is different from and beyond the observed.

This observer of the matter, this observer of the change is the changeless consciousness principle; which is beyond time and space. Consciousness does not fall within time. Consciousness does not fall within space. Consciousness therefore does not fall within matter and therefore consciousness does not fall within the physical and the chemical laws. And that is why the scientists who are struggling to understand consciousness in terms of the physical and chemical laws, they are not able to get head or tail. And some of the scientists have already started saying that consciousness is beyond the physical laws; is beyond chemical laws, is beyond even location. Consciousness cannot be located. Why it cannot be located; whatever exists within space can be located. Consciousness does not fall within space; therefore, it is unlocatable.

So where is it; no answer, where is God; there is no answer; because the very question is based on the misconception, that God is someone located in space; and when is God, it cannot be answered, because it is location in time. And how does God function? Even that cannot be answered; because the question how means cause and effect; which is also within time and space. In the field of God, even cause effect concept cannot enter. So, when, you cannot ask; where, you cannot ask; how, you cannot ask; why, you cannot ask; all these questions can be answered only with regard to a thing, which is time space and causality.

Anyway, Krishna does not dwell upon this topic; if you want to dwell upon this topic, you have to go to upaniṣads; upaniṣads alone enjoy dwelling on this topic; because Gītā is supposed to be a diluted subject matter and therefore this subtler topic.

Let us go back to our example of the movie projector where the light that illuminates the film strip identified itself with a character in the movie. How does that piece of light get liberated? By knowing that the identification with the movie character is false, and the identification with the light is real. The light in the projector remains constant regardless of how many times the movie is shown and rewound. It transcends the movie.

Similarly, Shri Krishna informs us that there is something beyond this cycle of creation and dissolution, something that transcends time and space. In other words, everything in this world is transitory and will eventually lead to sorrow. Unless we realize that everything that we think will give us happiness is subject to destruction sooner or later, we will never become aware that there is something beyond our materialistic pursuits.

So, what exactly is this "another unmanifest"? This is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

वैदिक ज्ञान की दृष्टि से ब्रह्म और परब्रह्म के समय और स्थान के परे ज्ञान का यह अत्यंत गुढ़ श्लोक है जो उस अत्यंत गंभीर परम ब्रह्म की ओर एक इशारा मात्र है।

पूर्व में हम ने अपरा एवम परा प्रकृति के भगवान के स्वरूप को पढ़ा। ब्रह्मा के दिन के समय सृष्टि सक्रिय हो जाती है और इस अपरा प्रकृति में परा प्रकृति आने से जीव जड़ से चेतन में क्रिया शील हो जाता है। यही समस्त सृष्टि ब्रह्मा के रात्रि के समय प्रलय के अनुसार नष्ट हो जाती है। किंतु परा प्रकृति नष्ट नही होती। यह ही पुनः ब्रह्मा के दिन के समय सृष्टि की रचना के समय जीव की भांति अपरा प्रकृति के साथ पुनः सक्रिय होती है। यह ही इस प्रकृति का अव्यक्त भाव है जो कभी नष्ट नही होता। यह अव्यक्त भाव अपने संस्कार, अहम एवम कामनाओं के साथ ब्रह्मा रचित सृष्टि से जुड़ा रहता।

अतः हम प्रकृति से बंधे होने से जो कुछ भी प्रमाणित मानते है उसे अपनी ज्ञानेद्रियों से परखना चाहते है। विज्ञान भी उसे प्रमाणित मानता है जो आंख, कान, नाक या अन्य ज्ञानेद्रियों से परखा या सिद्ध किया जा सकता है। इसलिए परा प्रकृति के विषय में अक्सर लोग विश्वास नहीं करते किंतु अनुभव से आने के बाद उस सिद्धांत को स्वीकार भी करने लगते है।

इसलिए पूर्व श्लोक में विभिन्न लोकों की बात करते हुए, ब्रह्मा के दिन, रात, वर्ष और आयु में सृष्टि के प्रलय और सर्ग को हम ने पढ़ा। किंतु प्रलय से सृष्टि नष्ट नही होती और बीज स्वरूप में सर्ग काल में पुनः निर्मित हो जाती है। अतः जब महा प्रलय में ब्रह्मा का अस्तित्व भी समाप्त होता है तो यह सृष्टि जिस में समाती है, वह ब्रह्म है। अतः काल खंड में स्थान और समय के चक्र में जो भी व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि इस ब्रह्माण्ड ही है, वह ब्रह्म से उत्पन्न होती है। किंतु इस ब्रह्म का स्तोत्र क्या है?

भगवान श्री कृष्ण कहते है प्रकृति के इस अव्यक्त भाव के अतिरिक्त एक अन्य सनातन अव्यक्त भाव भी है जो ब्रह्मा की रचना एवम विनाश से परे है। यह अव्यक्त भाव सनातन है, ब्रह्मा के दिन-रात की सृष्टि-प्रलय के चक्र से भी परे है, यह प्रलय या महाप्रलय में भी लुप्त या नाश नहीं होता। यह अविनाशी है।

इस अव्यक्त भाव को चौथे श्लोक में अधियज्ञ, नवे श्लोक में कवि- पुराण, आठवें एवम दसवें श्लोक में परम दिव्य पुरुष, बाइसवें श्लोक में परम पुरुष आदि के नाम से संबोधित किया गया है।

शंकराचार्य जी ने कहा है जो परमब्रह्म है, वही समय और स्थान से परे है, जिस में सभी समा जाए, वह स्वयं कहां है, कोई नही जानता। क्योंकि जो शाश्वत और सत्य है, जिस का आदि और अंत नहीं, जो समय और स्थान से परे है, उस परब्रह्म से सृष्टि के संकल्प और विकल्प की रचना का विचार भी उत्पन्न नही हो सकता। क्योंकि संकल्प के मन चाहिए, जो एक है, वहां संकल्प के लिए प्रर्याय भी नही है। इसलिए परब्रह्म से ब्रह्म की रचना या उत्पत्ति हुई, ब्रह्म ने स्वयं को अकेला पाया तो विकल्प के संकल्प से यह सृष्टि की रचना हुई। क्योंकि संकल्प तभी तैयार होगा जब उस में विचार या मन को स्थान हो। इसलिए परब्रह्म से सृष्टि की रचना की बात नही हो सकती क्योंकि वह एक ही है।

ब्रह्मा की दिन में सृष्टि की रचना होती है और रात में प्रलय। ऐसे ही ब्रह्मा के जीवन 100 वर्षो के उपरांत महा प्रलय होने से समस्त ब्रह्मलोक भी नष्ट होता है। फिर से सृष्टि का प्रारम्भ होता है। अतः यह सृष्टि भी अनन्त एवम नष्ट नही होती क्योंकि इस मे अव्यक्त भाव के साथ जीव अर्थात आत्मा है। इस लिए भगवान ने प्रकृति के अव्यक्त भाव से परे अन्य अव्यक्त भाव को बताया है। यहाँ अव्यक्तात् पद ब्रह्माजीके सूक्ष्म शरीर का ही वाचक है। कारण कि इससे पहले अठारहवें उन्नीसवें श्लोकों में सर्ग के आदि में ब्रह्माजी के सूक्ष्मशरीर से प्राणियों के पैदा होने की और प्रलय में ब्रह्माजी के सूक्ष्मशरीर में प्राणियों के लीन होने की बात कही गयी है। ब्रह्माजी के सूक्ष्म शरीर से पर दो तत्त्व हैं - मूल प्रकृति और परमात्मा। यहाँ प्रसङ्ग मूल प्रकृति का नहीं है प्रत्युत परमात्मा का है। अतः इस श्लोक में परमात्मा को ही पर और श्रेष्ठ कहा गया है जो सम्पूर्ण प्राणियों के नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता। जिसे हम परा प्रकृति भी कहते है। अपरा प्रकृति व्यक्त भाव है एवम परा प्रकृति अव्यक्त भाव है।

जिस अक्षर का पहले प्रतिपादन किया था उस की प्राप्ति का उपाय ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म इत्यादि कथन से बतला दिया। अब उसी अक्षर के स्वरूप का निर्देश करने की इच्छा से यह बतलाया जाता है कि इस योग मार्ग द्वारा अमुक वस्तु मिलती है। वह अव्यक्त भाव यानी अक्षरनामक परब्रह्म परमात्मा अत्यन्त भिन्न है। वह इन्द्रियों से प्रत्यक्ष न होनेवाला अव्यक्तभाव अन्य, दूसरा है अर्थात् सर्वथा विलक्षण है। वह उस पूर्वोक्त भूतसमुदाय के बीज भूत अविद्यारूप अव्यक्त से परे है। ऐसा जो सनातन भाव अर्थात् सदा से होनेवाला भाव है वह ब्रह्मादि समस्त प्राणियों का नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता। अतः ब्रह्मा की सृष्टि जिस में अंत मे विलय हो जाती है, वह सनातन अव्यक्त परब्रह्म मृत्यु लोक से ब्रह्मलोक से परे है। मृत्यु लोक से ब्रह्म लोक तक प्रकृति का स्वरूप क्षर है क्योंकि इसे कभी न कभी नष्ट होना है। फिर हम अक्षर ब्रह्म किसे कहे, यही भगवान श्री कृष्ण कह रहे है। प्रकृति और जीव का ज्ञान सांख्य योग का है और इस के आगे परब्रह्म का ज्ञान वेदान्त का है।

संक्षेप में हम इस प्रकार समझे:

क्षर ब्रह्म : आत्मा , बद्ध आत्मा, जीवात्मा अर्थात जो जीव प्रकृति के सत, रज और तम गुण के आधीन है।

ईश्वर : जिस आत्मा द्वारा प्रकृति के गुणों पर नियंत्रण हो अर्थात जिस ने प्रकृति के गुणों पर विजय प्राप्त कर ली, जो प्रकृति की माया को समझ जाता है, वह ही देवता, ईश्वर या परमात्मा कहलाता है।

ब्रह्मा: ब्रह्मांड के साकार सृजन करने वाले को ब्रह्मा कहा गया है।

निर्गुण ब्रह्म और ब्रह्म : सभी चेतन और निर्जीव वस्तुओ का मूल आश्रय और विनाश का केंद्र बिंदु है। कभी कभी ब्रह्म को पुरुष शब्द से भी संबोधित किया गया है।

परमब्रह्म: सर्वव्याप्त, निर्गुण, निराकार अविनाशी, नित्य, संपूर्ण सृष्टि का आधार, अकर्ता, साक्षी और अव्यक्त को परमब्रह्म माना गया है। जो सर्वव्याप्त है और उस के अतिरिक्त कुछ भी नही तो जीव के अनुभव का विषय भी नही, क्योंकि उस के पास द्वैत है ही नही।

हिंदू संस्कृति सृजनवाद की अपेक्षा उत्पत्तिवाद को मान्यता देती है, इसलिए सृष्टि की उत्पत्ति अणु से हुई है, इस की रचना नही की गई। कणाद ऋषि का प्रमाणुवाद भी इसी की पुष्टि करता है।

अभी तक जो परमात्मविषयक वर्णन हुआ है उस सब की एकता करते हुए अनन्यभक्ति के विशेष महत्त्व का वर्णन हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.20।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.21॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

"avyakto 'kṣara ity uktas,
tam āhuḥ paramāḿ gatim..।
yaḿ prāpya na nivartante,
tad dhāma paramaḿ mama"..।।

भावार्थ:

जिसे वेदों में अव्यक्त अविनाशी के नाम से कहा गया है, उसी को परम-गति कहा जाता हैं जिसको प्राप्त करके मनुष्य कभी वापस नहीं आता है, वही मेरा परम-धाम है। (२१)

Meaning:

He who is called unmanifest and imperishable, he who has been spoken of as the supreme goal; having attained him (beings) do not return, that is my supreme abode.

Explanation:

Earlier in this chapter, Shri Krishna had mentioned that those who attain Ishvara are not subject to further rebirth. In this shloka, he says that the “another unmanifest” that remains unaffected by the day and night of Lord

Brahma is nothing but Ishvara. He also mentions the nature of Ishvara as imperishable, unmanifest and supreme.

With this shloka, we come back to the main theme that began in chapter seven - Ishvara. After having explained that this universe is subject to cycles of creation and dissolution, and that unless we take effort, we are stuck in this infinite cycle, Shri Krishna reiterates the need for the pursuit of Ishvara as the means of liberation.

The spiritual realm has a divine sky called the Paravyom, where all the different forms of God have their eternal abodes called the Lokas. The Supreme Lord resides in His various divine forms in these Lokas along with His eternal associates. Golok is the divine abode of Lord Krishna, Saket Lok is the abode of Lord Ram, Vaikunth Lok is the abode of Lord Vishnu, Shiv Lok is the abode of Lord Shiv, Devi Lok is the abode of Divine Mother Durga, etc. These divine forms are non-different from the Supreme Lord; they are all divine forms of the same one God. A devotee may worship any of the forms of God and strive to attain Him. Once God-realized, their soul will reach the divine Lok of that form of God and remain there forever. It receives a divine body and participates in the divine pastimes and activities of the Lord.

Krishna talks more about God, the limitless goal; the real goal of life, which is worth attempting; which is avyakataḥ; avyaktha, mentioned in the previous verse means Consciousness principle and this consciousness or caitanyam; also known in the scriptures as akṣaraḥ; literally means imperishable means, imperishable means timeless.

Arjuna accomplishing such Brahman is the real goal; because only then you will go beyond time and space; any located place you go, then you are within space; whether you call it Vaikuntha; whether you call it Kailasa, whether you call it Brahma lōkā, you have a concept of a particular place, it is within space and therefore time, therefore it cannot be called liberation. That is why we say liberation is not going to any place at all. So then what is that liberation? Liberation is going to Brahman.

So therefore, for the seeker who performs karma yoga and upaasanaa or devotion towards Ishvara attains Ishvara after he has completed his time on earth and in the abode of Lord Brahma. Shri Krishna summarizes the means of

attaining Ishvara in the next shloka, which also concludes the topic of liberation from rebirth.

।। हिंदी समीक्षा ।।

पूर्व श्लोक एवम अब तक के अध्ययन के जब भी अव्यक्त प्रकृति का सम्बंध आया तो वो पुनरवर्तन से संबंधित था। किंतु जिस अक्षर ब्रह्म का अव्यक्त भाव हम ने पढ़ा वो सनातन है।

परमात्मा ने अपनी उपस्थिति के तीन स्थान बताए है। 1) अपरा प्रकृति जो जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, मन, बुद्धि एवम अहंकार द्वारा प्रथम पांच में व्यक्त है 2) परा प्रकृति में परमात्मा से परिच्छिन्न हो कर आत्मा या चेतन स्वरूप जो अव्यक्त है। यही अव्यक्त स्वरूप में प्रकृति अपना संबंध अपरा प्रकृति से बना लेती है जिस के कारण वो कर्मबन्धन में पड़ कर बार जन्म लेती है। 3) तीसरा परमात्मा का स्वयं का अव्यक्त स्वरूप है जो ब्रह्मा के सृष्टि लोक से परे अविनाशी एवम सनातन है।

परा प्रकृति की परिच्छिन्न अवस्था जब तक परमात्मा के मूल अव्यक्त रूप से नही मिलती, उस का जन्म मरण का चक्र समाप्त नही होता। अतः साकेत लोक में राम, गोकुल में कृष्ण, वैकुंठ में विष्णु, कैलाश में शिव और ब्रह्मलोक में ब्रह्मा किसी में भी जाए, यह सब काल खंड में बंधे समय और स्थान मात्र है। जीव कितना भी समय वहां व्यतीत करे, उसे मुक्ति तो अव्यक्त ब्रह्म में विलीन होने से ही मिलेगी।

जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है उसी अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परम श्रेष्ठ गति कहते हैं। जिस परम भाव को प्राप्त होकर (मनुष्य) फिर संसार में नहीं लौटते वह मेरा परम श्रेष्ठ स्थान है अर्थात् मुझ विष्णु का परमपद है। जिसे हम लोक परमधाम भी कह सकते है।

जिसे सनातन अव्यय भाव कहा गया है जो अविनाशी रहता हैं उसे ही यहाँ अक्षर शब्द से इंगित किया गया है। अध्याय के प्रारम्भ में कहा गया था कि अक्षर तत्त्व ब्रह्म है जो समस्त विश्व का अधिष्ठान है। ॐ या प्रणव उस ब्रह्म का वाचक या सूचक है जिस पर हमें ध्यान करने का उपदेश दिया गया था। यह अविनाशी चैतन्य स्वरूप आत्मा ही अव्यक्त प्रकृति को सत्ता एवं चेतनता प्रदान करता है जिस के कारण प्रकृति इस वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि को व्यक्त करने में समर्थ होती है। यह सनातन अव्यक्त अक्षर आत्मतत्त्व ही मनुष्य के लिए प्राप्त करने योग्य परम लक्ष्य है। संसार में जो कोई भी स्थिति या लक्ष्य हम प्राप्त करते हैं उस से बारम्बार लौटना पड़ता है। संसार शब्द का अर्थ ही है वह जो निरन्तर बदलता रहता है।

निद्रा कोई जीवन का अन्त नहीं वरन् दो कर्मप्रधान जाग्रत अवस्थाओं के मध्य का विश्राम काल है उसी प्रकार मृत्यु भी जीवन की समाप्ति नहीं है। प्रायः वह जीव के दो विभिन्न शरीर धारण करने के मध्य का अव्यक्त अवस्था में विश्राम का क्षण होता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि इस लोक से ले कर ब्रह्मलोक तक के सभी लोक पुनरावर्ती हैं जहाँ से जीवों को पुनः अपनी वासनाओं के क्षय के लिए शरीर धारण करने पड़ते हैं। पुनर्जन्म दुःखालय कहा गया है इसलिए परम आनन्द का लक्ष्य वही होगा जहाँ से संसार का पुनरावर्तन नहीं होता।प्रायः वेदान्त के जिज्ञासु विद्यार्थी प्रश्न पूछते हैं कि आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् पुनरावर्तन क्यों नहीं होगा यद्यपि ऐसा प्रश्न पूछना स्वाभाविक ही है तथापि वह क्षण भर के परीक्षण के समक्ष टिक नहीं सकता। सामान्यतः कारण की खोज उसी के सम्बन्ध में की जाती है जो वस्तु उत्पन्न होती है या जो घटना घटित होती हैं और न कि उस के सम्बन्ध में जो अनुत्पन्न या अघटित है

कोई मुझे उत्सुकता से यह नहीं पूछता कि मैं अस्पताल में क्यों नहीं हूँ जबकि अस्पताल में जाने पर उसका कारण जानना उचित हो सकता है।

हम यह पूछ सकते हैं कि अनन्त ब्रह्म परिच्छिन्न कैसे बन गया परन्तु इस प्रश्न का कोई औचित्य ही सिद्ध नहीं होता कि अनन्त वस्तु पुनः परिच्छिन्न क्यों नहीं बनेगी यह प्रश्न अत्युक्तिक इसलिए है कि यदि वस्तु अनन्तस्वरूप है तो वह न कभी परिच्छिन्न बनी थी और न कभी भविष्य में बन सकती है। एक छोटी सी बालिका को हम वैवाहिक जीवन के शारीरिक और भावुक पक्ष के सुखों का वर्णन करके नहीं बता सकते हैं और न समझा सकते हैं। उस में उस विषय को समझने की शारीरिक और मानसिक परिपक्वता नहीं होती। बचपन में वह केवल यह चाहती है कि उस की माँ उस का विवाह करे परन्तु वही बालिका युवावस्था में पदार्पण करने पर उस विषय को समझने योग्य बन जाती है। इसी कारण अन्तःकरण की अशुद्धि रूप गोबर के ढेर के अशुद्ध वातावरण में पड़ा हुआ व्यक्ति खुले आकाश में मन्दमन्द प्रवाहित समीर की सुगन्ध को कभी नहीं जान सकता। जब वह व्यक्ति उपदिष्ट ध्यानविधि के अभ्यास से उपाधियों के साथ हुए मिथ्या तादात्म्य को दूर कर देता है तब वह अपने शुद्ध अनन्तस्वरूप का साक्षात् अनुभव करता है। स्वप्न से जागने पर ही स्वप्न के मिथ्यात्व का बोध होता है अन्यथा नहीं और एक बार जाग्रत् अवस्था में आने के पश्चात् स्वप्न के सुख और दुःख के प्रभाव से मनुष्य सर्वथा मुक्त हो जाता है।यहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा को महर्षि व्यास जी ने काव्यात्मक शैली द्वारा श्रीकृष्ण के निवास स्थान के रूप में वर्णित किया है तद्धाम परमं मम। अनेक स्थलों पर यह स्पष्ट किया गया है कि गीता में भगवान् श्रीकृष्ण मैं शब्द का प्रयोग आत्मस्वरूप की दृष्टि से करते हैं। अतः यहाँ भी धाम शब्द से किसी स्थान विशेष से तात्पर्य नहीं वरन् उनके स्वरूप से ही है। यह आत्मानुभूति ही साधक का लक्ष्य है जो उसके लिए सदैव उपलब्ध भी है।

यहां ध्यान देने योग्य बात है कि अव्यक्त शब्द का प्रयोग ब्रह्मा में लीन प्रलय के समय द्रव्य के लिये श्लोक 18 में किया गया था जिस से दिन में सृष्टि की रचना ब्रह्मा करते है, इस को साख्यो की प्रकृति भी बोला गया है। यही शब्द अब अक्षर ब्रह्म परम अध्याय के प्रारम्भ में परमात्मा के परम धाम के लिये भी प्रयुक्त हुआ है जहां मनुष्य यानि जीव पहुच के पुनरवर्तन को प्राप्त नही होता। अतः अव्यक्त शब्द ब्रह्म लोक एवम परमात्मा के सनातन धाम दोनों के लिये विभिन्न अर्थों के साथ कभी सांख्यों की प्रकृति के लिये और कभी प्रकृति से परे परब्रह्म के लिये प्रयोग किया गया है।

गीता में अव्यक्त, अविनाशी और अक्षर का प्रयोग यद्यपि सात्विक गुणों से युक्त व्यक्ति या जीव के लिये भी चन्द्रलोक, स्वर्ग या ब्रह्मलोक को प्राप्ति के लिये भी प्रयुक्त हुआ है किंतु वेद का आधार ले कर भगवान श्री कृष्ण स्पष्ट कहते है कि वास्तविक अर्थ आर्त, अर्थार्थी और जिज्ञासु भक्ति जो कामना एवम अहम के साथ है एवम जो कर्म कांड, दान-पुण्य आदि को ले कर की गई है, वह संसार मे पुनरावर्ती श्रेणी की है। वास्तविक अर्थ उस परमधाम अर्थात परब्रह्म में जीव के विलय से लेना चाहिये, जिस में पुनरावर्ती नही है और जीव जन्म-मरण से पूर्णतयः मुक्त होता है। यह भक्ति निष्काम कर्म सन्यास योग से प्राप्त होती है।

व्यवहारिक जगत में ऊर्जा सब क्रियाओं और पदार्थों का स्तोत्र है किंतु ऊर्जा का स्तोत्र क्या है, उसे ही वेदांत में अव्यक्त ब्रह्म कहा गया है। प्रकृति, आत्मा परमात्मा, ब्रह्म और परब्रह्म ऊर्जा के विभिन्न स्तोत्र एक दूसरे से ऊर्जा को प्राप्त करते है। ऊर्जा के स्तोत्र से द्रव्यमान और द्रव्यमान से ऊर्जा के सापेक्षवाद

के सिद्धांत को हम परखे तो अव्यक्त ब्रह्म से सृष्टि की रचना और फिर सृष्टि का पुनः इस में विलीन होना समझ सकते है। इस में महान वैज्ञानिक आल्बर्ट आइन्स्टाइन (जर्मन: Albert Einstein; 14 मार्च 1879 - 18 अप्रैल 1955) एक विश्वप्रसिद्ध सैद्धांतिक भौतिकविद्, जो सापेक्षता के सिद्धांत और द्रव्यमान-ऊर्जा समीकरण $E = mc^2$ के लिए जाने जाते हैं। उन्हें सैद्धांतिक भौतिकी, खास कर प्रकाश- विद्युत ऊत्सर्जन की खोज के लिए 1921 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

आइन्स्टाइन ने विशेष सापेक्षिकता (1905) और सामान्य आपेक्षिकता के सिद्धांत (1916) सहित कई योगदान दिए। उन के अन्य योगदानों में- सापेक्ष ब्रह्मांड, केशिकीय गति, क्रांतिक उपच्छाया, सांख्यिक मैकेनिक्स की समस्याएँ, अणुओं का ब्राउनियन गति, अणुओं की उत्परिवर्त्तन संभाव्यता, एक अणु वाले गैस का क्वांटम सिद्धांत, कम विकिरण घनत्व वाले प्रकाश के ऊष्मीय गुण, विकिरण के सिद्धांत, एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत और भौतिकी का ज्यामितीकरण शामिल है। आइन्स्टाइन ने पचास से अधिक शोध-पत्र और विज्ञान से अलग किताबें लिखीं। 1999 में टाइम पत्रिका ने शताब्दी-पुरूष घोषित किया।एक सर्वेक्षण के अनुसार वे सार्वकालिक महानतम वैज्ञानिक माने गए। यह वर्णन वस्तुतः सृष्टि की रचना में ब्रह्म और अव्यक्त परमब्रह्म का ही एक छोटा सा विश्लेषण कहना चाहिए। जो हम भगवान श्री कृष्ण से सुन रहे है।

वेद और उपनिषद में जो ज्ञान अनुभव के आधार पर हमारे पूर्वज महान ऋषि - मुनियों ने दिया है, वह उचित अनुसंधान के अभाव में लुप्त होता गया। हमारी आस्था श्रद्धा, विश्वास, प्रेम में अधिक होने से, ज्ञान का मार्ग अवरूद्ध हो गया, इसलिए गीता के ज्ञान के अध्याय को भी लोग धर्मग्रंथ की भांति परमात्मा की स्तुति की भांति पढ़ने लगे और उस से उन्हें अपने भौतिक लाभ और चमत्कार की आशा ज्यादा हो गई। ज्ञान की दृष्टि में गीता को अध्ययन करने का अर्थ समस्त वेदों और उपनिषदों का अध्ययन करना है, जो प्रत्येक मनुष्य के संभव नही होने से, अक्सर गीता को ज्ञान की दृष्टि से बोधगम्य करना कठिन है, इसलिए अक्सर लोग गीता अध्ययन को बीच में ही छोड़ देते है। जब कि गीता समझने के लिए ही बार बार पढ़नी पड़ती है।

अगला श्लोक यद्यपि इस का प्रायः श्लोक है किंतु हम अगले श्लोक में परमात्मा के धाम एवम प्राप्ति को प्राप्त करने विषय मे पढेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।।8.21।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.22॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥

"puruṣaḥ sa paraḥ pārtha,
bhaktyā labhyas tv ananyayā..l
yasyāntaḥ-sthāni bhūtāni,
yena sarvam idaḿ tatam"..।।

भावार्थ:

हे पृथापुत्र! वह ब्रह्म जो परम-श्रेष्ठ है जिसे अनन्य-भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, जिसके अन्दर सभी जीव स्थित हैं और जिसके कारण सारा जगत दिखाई देता है। (२२)

Meaning:

That supreme person, in whom all beings are included, by whom all this is pervaded, O Paartha, is obtained through single-pointed devotion.

Explanation:

With this shloka, Shri Krishna summarizes the topic of complete liberation. The detail around the creation and dissolution of the universe was meant to highlight the notion that only through liberation can we rise above that endless cycle. Shri Krishna gives us the means for liberation as well as the attributes of the goal which is Ishvara.

Shri Krishna says that liberation is obtained through single- pointed devotion to Ishvara. Single- pointed devotion was covered in chapter six. **However, here it is meant to include not just devotion but also karma yoga. If the karma yoga aspect is missing, our vaasanaas or latent desires will remain unfulfilled, pulling us back into the cycle of rebirth so that they will be fulfilled.**

So, Shri Krishna says; God is present everywhere. The same Supreme Lord who resides in the spiritual sky in His divine abode, at the same time, is seated in the hearts of every living creature. He is all- pervading and present in every atom of the material world. It is not that He is a hundred percent God in His personal form and ten percent when He is in our hearts or anywhere else in the material world. God exists a hundred percent in all His forms. Due to our ignorance, we are unable to recognize His presence within us or all around us.

Now, what is Ishvara's connection to creation and dissolution? Ultimately, Ishvara is the cause of all creation. But he is not someone who stands outside his creation. The classic example referenced in this context is that of the potter and the pot. The potter creates the pot out of clay, but remains outside the pot, distinct from the pot. Ishvara is not like that. He is like the ocean that creates waves. The waves are pervaded by the ocean and are also included in

the ocean. So is the case with Ishvara. Therefore, Ishvara is everywhere (beyond space) and ever present (beyond time).

Thus, both saguṇa and nirguṇa aspects are told, here in Him alone all the beings rests and by this consciousness the whole creation is pervaded; because if you talk about the existence of anything; consciousness must be present there.

Krishna himself feels that many people feel that this is too high a subject matter, which goes many feet beyond the head. So, Krishna says ananyayā bhaktyā labhyaḥ. You can to nirguṇam brahma; by your Niṣkāma bhakthi; once you understand that alone is the ultimate goal, because anything else falls within what time and space and therefore mortality; once you have understood tyranny of time, and once you have sincerely voted for the timeless Brahman, you are called a Niṣkāma bhaktha; or a mumukṣu; And with this sincere desire, you continue your saguṇa bhakthi; sooner or later, you will get the qualifications required for that nirguṇa bhakthi; therefore he says ananyaya bhaktya; Niṣkāma bhakthya; saḥ puruṣaḥ labhyaḥ; that Brahman is attainable.

Chaitanya Mahaprabhu very nicely said: “Although karma, jnana, and ashtanga yoga are also pathways to God- realization, all these require the support of bhakti for their fulfillment.”

“One may practice ashtanga yoga, engage in austerities, accumulate knowledge, and develop detachment. Yet, without devotion, one will never attain God.”

Having conclude the topic of liberation, Shri Krishna begins the last topic of this chapter in the next shloka. He describes the two paths that seekers have to travel through after they pass away.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जीव के चार पुरुषार्थ बताए गए है: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन सभी पुरुषार्थ में जीव का अंतिम लक्ष्य मुक्ति है अर्थात जिस के बाद पुनः जन्म - मरण का चक्र नही रहे। अतः पाप और पुण्य के फलों को भोगने के चौदह लोक बताए गए जिस में स्वर्ग से ले कर ब्रह्म लोक सभी सीमित अर्थ में मुक्ति का मार्ग है। संपूर्ण मुक्ति उसी अव्यक्त ब्रह्म में विलीन होना है, जिस के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। इसलिए पूर्व के श्लोक में अव्यक्त अक्षर ब्रह्म को हम ने पढ़ा और अब मुक्ति के लिए भगवान श्री कृष्ण क्या कहते है, पढ़ते है।

परमात्मा ने स्वयं के स्वरूप को समझाते हुए अभी तक बताया। जिसे अनन्या भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है वो ही श्रेष्ठ पुरुष है, जिस के अंतर्गत सम्पूर्ण जड़ और चेतन भूत है और जिस के द्वारा यह संसार फैला हुआ है। क्षर एवम अक्षर से श्रेष्ठ होने के कारण भगवान पुरुषोत्तम कहे जाते है। क्षर बद्ध जीव को कहते है और अक्षर मुक्त आत्मा को कहते है। भगवान बद्धात्मा और मुक्तात्मा से श्रेष्ठ है।

मैं बद्ध आत्मा से अतीत हूँ एवम अक्षर मुक्त आत्मा से भी उत्तम हूँ इसलिये श्रुति एवम स्मृति में मैं ही पुरुषोत्तम कहलाता हूँ।

सात्त्विक राजस और तामस भाव मेरे से ही होते हैं पर मैं उन में हूँ और वे मेरे में नहीं हैं। परमात्मा के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्राणी हैं और परमात्मा सम्पूर्ण संसार में परिपूर्ण हैं। तात्पर्य यह हुआ कि मेरे सिवाय किसी की भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। सब मेरे से ही उत्पन्न होते हैं मेरे में ही स्थित रहते हैं और मेरे में ही लीन होते हैं अतः सब कुछ मैं ही हुआ। वे परमात्मा सर्वोपरि होने पर भी सब में व्याप्त हैं अर्थात् वे परमात्मा सब जगह हैं सब समय में हैं सम्पूर्ण वस्तुओं में हैं सम्पूर्ण क्रियाओं में हैं और सम्पूर्ण प्राणियों में हैं। ऐसे ही संसार के पहले भी परमात्मा थे संसार रूप से भी परमात्मा ही हैं और संसार का अन्त होने पर भी परमात्मा ही रहेंगे।

सागर में लहर उत्पन्न होती है और उसी में विलीन हो जाती है। प्रत्येक लहर में सागर है किंतु सागर लहर नहीं है। इसी भाव को अव्यक्त ब्रह्म में हम कहते है कि सृष्टि के प्रत्येक कण में परमात्मा है किंतु कोई भी कण परमात्मा नही है।

इस तथ्य को जानना जितना सरल लगता है, उसे प्राप्त करना उतना ही दुर्लभ है। क्योंकि अव्यक्त ब्रह्म की स्थिति में जीव के पास महंत, बुद्धि और मन कुछ भी नही रहता, वह एक विशुद्ध आत्मा मात्र है। इसलिए किसी भी ज्ञानी को इस स्थिति में अनन्य भक्ति के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। अनन्य भक्ति का अर्थ ही है, जहां भक्त और भगवान में कोई भी अन्य न हो। अनन्य भक्ति का मार्ग निष्काम कर्म योग से जुड़ा है, क्योंकि जब तक कामना और आसक्ति रहती है, तो अनन्य भक्ति हो ही नही सकती। जीव अपने प्रारब्ध के कर्मों को भोगता ही है और कर्म जीव की अनिवार्यता भी है, इसलिए कर्मयोगी ही अनन्य भक्ति के मार्ग में अक्षर ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है।

ऐसा वह परम पुरुष परमात्मा अनन्यभक्ति से प्राप्त होता है।परमात्मा के सिवाय प्रकृति का यावन्मात्र कार्य अन्य कहा जाता है। जो उस अन्य की स्वतन्त्र सत्ता मानकर उस को आदर देता है महत्त्व देता है उस की अनन्य भक्ति नहीं है। इस से परमात्मा की प्राप्ति में देरी लगती है।

अनन्या भक्ति से जिसे प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञानी एवम भक्ति दोनों ही अनन्या है क्योंकि ज्ञानी भगवान की आत्मा है और भक्ति भी भगवान की आत्मा को प्रिय है। ज्ञानी भी बिना भक्ति के पूर्ण नही। अतः निर्गुणकार या गुणाकार अर्थात ज्ञानी एवम भक्ति दोनों ही परमात्मा के सनातन स्थान को अनन्या भक्ति द्वारा प्राप्त करने के अधिकारी है।

उपासनाओं की जितनी गतियाँ हैं वे सब मेरे स्वरूप के अन्तर्गत आ जाती हैं। ऐसा वह मेरा सर्वोपरि स्वरूप केवल मेरे परायण होने से अर्थात् अनन्यभक्ति से प्राप्त हो जाता है। मेरा स्वरूप प्राप्त होने पर फिर साधक की न तो अन्य स्वरूपों की तरफ वृत्ति जाती है और न उनकी आवश्यकता ही रहती है। उसकी वृत्ति केवल मेरे स्वरूप की तरफ ही रहती है। इस प्रकार ब्रह्माजीके लोक से मेरा लोक विलक्षण

है ब्रह्माजी के स्वरूप से मेरा स्वरूप विलक्षण है और ब्रह्मलोक की गति से मेरे लोक(धाम) की गति विलक्षण है। तात्पर्य है कि सब प्राणियों का अन्तिम ध्येय मैं ही हूँ और सब मेरे ही अन्तर्गत हैं।

भगवान ने अनन्य भक्ति की बात उस को प्राप्त करने के लिये कही है, ज्ञान लक्षणा भक्ति का नाम ही अनन्य भक्ति है, इस ज्ञान के अपरोक्ष द्वारा ही वह पाने योग्य है। नित्य पारमार्थिक सत्य से प्रेम ही वह साधन है जिसके द्वारा मिथ्या वस्तु से वैराग्य होता है। प्रखर जिज्ञासा से अनुप्राणित हुई आत्मतत्त्व की खोज और फिर उसके साथ एकत्त्व की यह अनुभूति कि यह आत्मा मैं हूँ अनन्य भक्ति है जिसके विषय में यहाँ बताया गया है।ध्यानावस्थित मन के द्वारा जिस आत्मा की अनुभूति स्वस्वरूप के रूप में होती है उसे कोई परिच्छिन्न चेतन तत्त्व नहीं समझना चाहिए जो केवल एक व्यष्टि उपाधि में ही स्थित उसे चेतनता प्रदान कर रहा हो। जो पुरुष आत्मस्वरूप का साक्षात् अनुभव कर लेता है वह यह समझ लेता है कि इस नानाविध सृष्टि का एक ही अधिष्ठान है जिसके अज्ञान से ही इस जगत् का प्रत्यक्ष हो रहा है। जीव अज्ञान के वश इसे ही सत्य समझ कर संसार के मिथ्या दुःखों से पीड़ित रहता है। इसलिये वो परमात्मा का नित्य स्मरण अनन्य भक्ति भाव से करते हुए उस से और केवल मात्र उस से जुड़ जाता है।

इहलोक से ब्रह्मलोक की वास्तिवकता का ज्ञान देने के बाद मुक्ति हम किसे कह सकते है, तो वह पुनरावृति से मुक्ति ही है, क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि का जीवन चक्र है, वह उन को अपने अंदर समेटे हुए है किंतु फिर भी सम्पूर्ण सृष्टि नही है, जो सनातन है, नित्य है, अविनाशी और समस्त विकारों से परे है, जब तक जीव का उस मे विलय न हो तब तक मुक्ति नही है। निष्काम कर्मयोग से ज्ञान, ज्ञान से ओंकार की ब्रह्मरूप उपासना और अपने अहम का परब्रह्म में लीन होना ही अनन्य भक्ति का स्वरूप है। इस प्रकार की अनन्य भक्ति के अभाव में सिर्फ तत्वज्ञान से पुनरावृति का न होना संभव नही है।

"शुद्ध चित्तवाले मुमुक्षुओं का एकसत्स्वरूप ब्रह्म के साथ जो एकत्व अर्थात भेदरहित दर्शन है , वह ब्रह्मस्वरूप से स्थितिरूप मुक्ति का निष्कण्क मार्ग है।।"

सोलहवें श्लोक में भगवान् ने बताया कि ब्रह्मलोक तक को प्राप्त होने वाले लौटकर आते हैं और मेरे को प्राप्त होने वाले लौट कर नहीं आते। परंतु किस मार्ग से जाने वाले लौट कर नहीं आते और किस मार्ग से जानेवाले लौट कर आते हैं, यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.22।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.23॥

यत्र काले त्वनावत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥

"yatra kāle tv anāvṛttim,
āvṛttiḿ caiva yoginaḥ..।
prayātā yānti taḿ kālaḿ,
vakṣyāmi bharatarṣabha"..।।

भावार्थ:

हे भरतश्रेष्ठ! जिस समय में शरीर को त्यागकर जाने वाले योगीयों का पुनर्जन्म नही होता हैं और जिस समय में शरीर त्यागने पर पुनर्जन्म होता हैं, उस समय के बारे में बतलाता हूँ। (२३)

Meaning:

But (there exists) the path of no return for a yogi who is leaving his body, and also the path of return, I shall speak about those, O scion of the Bharatas.

Explanation:

In these verses, Shree Krishna continues to answer the question Arjun had asked in verse 8.2, "How can one be united with God at the time of death?"

With this shloka, Shri Krishna commences a new topic. He provides details around the journey of the jeeva after death.

As we have seen earlier that journey differs from person to person. It is determined solely by two things: how we have acted and how we have thought. In other words, our actions and our thoughts in this life decide what happens in our next life. In this chapter, Shri Krishna has spoken about two kinds of people.

Shree Krishna explains that there are two paths—the path of light or the path of darkness. Although these statements may seem cryptic, they present an effective allegory to explain spiritual concepts using the contrasting themes: light and darkness. Where light; is symbolic to knowledge and darkness; is for ignorance.

The first category of people are those who perform good actions in their lives. The second category of people are those who are solely devoted to Ishvara, in addition to performing good actions. This is Shri Krishna speaks about two paths in this shloka. Each category travels on a different path after death.

In the next two shlokas, each of these paths is explained in further detail. One path leads to liberation, which means that those who attain this path do not come back, they are not born again. The other path leads to rebirth or return.

।। हिंदी समीक्षा ।।

अर्जुन का सांतवा प्रश्न था कि जो संसार से सर्वथा हटकर अनन्य भाव से केवल आप में ही लगे हुए हैं उन के द्वारा अन्तकाल में आप कैसे जानने में आते हैं अर्थात् वे आप के किस रूप को जानते हैं और किस प्रकार से उन के द्वारा जाना जानते हैं।

पूर्व श्लोक में भगवान अपने स्वरूप, ब्रह्म लोक, पुनरवर्तन एवम व्यक्त-अव्यक्त स्वरूप का वर्णन एवम निर्गुणकार एवम सगुणाकार स्वरूप की आराधना करने वाले जीव के बारे में बताने के बाद उन तक पहुचने का मार्ग जिसे काल कह कर संबोधित किया है बताते है।

पूर्व के श्लोक में दो प्रकार की मुक्ति कही गई, जिस में प्रथम कर्म मुक्ति जिस से जीव ब्रह्म लोक जैसे लोक में चले जाते है और फिर वहां से अहम को त्याग करते हुए जीवन मुक्ति को प्राप्त करते है। किंतु उस समय ब्रह्मा के सर्ग और प्रलय के साथ साथ जीव का भी जन्म - मरण का कर्म शुरू रहता है। इसलिए इस मार्ग को कृष्ण पक्ष अर्थात अंधकार की ओर चलने वाला मार्ग कहा गया है।

जो साधक किसी सूक्ष्म वासना के कारण ब्रह्मलोक में जाकर क्रमशः ब्रह्माजी के साथ मुक्त हो जाते हैं उन की मुक्ति को क्रममुक्ति कहते हैं। जो केवल सुख भोगने के लिये ब्रह्मलोक आदि लोकों में जाते हैं वे फिर लौट कर आते हैं। इस को पुनरावृत्ति कहते हैं।

जीवित अवस्था में ही बन्धन से छूटने को सद्योमुक्ति कहते हैं अर्थात् जिन को यहाँ ही भगवत् प्राप्ति हो गयी भगवान् में अनन्यभक्ति हो गयी अनन्य प्रेम हो गया वे यहाँ ही परम संसिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। यह लोग सीधे परमात्मा में विलय या लीन हो जाते है।

सद्योमुक्ति का वर्णन तो पंद्रहवें श्लोक में हो गया पर क्रममुक्ति और पुनरावृत्ति का वर्णन करना बाकी रह गया। अतः इन दोनों का वर्णन करने के लिये भगवान् आगे का प्रकरण आरम्भ करते हैं।

अभ्युदय और निःश्रेयस ये वे दो लक्ष्य हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए मनुष्य अपने जीवन में प्रयत्न करते हैं। अभ्युदय का अर्थ है लौकिक सम्पदा और भौतिक उन्नति के माध्यम से अधिकाधिक विषयों के उपभोग के द्वारा सुख प्राप्त करना। यह वास्तव में सुख का आभास मात्र है क्योंकि प्रत्येक उपभोग के गर्भ में दुःख छिपा रहता है। यह लोग कामना के साथ पुण्य कार्य करते है और अपने अपने पुण्य के अनुसार चन्द्रलोक, वरुण लोक, इंद्रलोक एवम ब्रह्मादि लोक को प्राप्त होते है और अपने पुण्य को भोग कर पुनः संसार मे आवर्त होते है।

निःश्रेयस का अर्थ है अनात्मबंध से मोक्ष। इस में मनुष्य आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है जो सम्पूर्ण जगत् का अधिष्ठान है। इस स्वरूपानुभूति में संसारी जीव की समाप्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है। इन्हें योगिनः कहा गया है अर्थात जो परमात्मा का स्मरण अनन्या भक्ति से करते है। इन मे योगी भी है जो तप आदि करते है। ऐसे योगी अनावृति को प्राप्त होते है एवम अर्चिरादि मार्ग से परमात्मा को प्राप्त हो कर पुनः जन्म नही लेते। जो सांसारिक पदार्थों और भोगों से विमुख होकर परमात्मा के सम्मुख हो गये हैं वे अनावृत ज्ञानवाले हैं अर्थात् उन का ज्ञान (विवेक) ढका हुआ नहीं है प्रत्युत जाग्रत् है। इसलिये वे अनावृत्ति के मार्ग में जाते हैं जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता।

ये दोनों लक्ष्य परस्पर विपरीत धर्मों वाले हैं। भोग अनित्य है और मोक्ष नित्य एक में संसार का पुनरावर्तन है तो अन्य में अपुनरावृत्ति। अभ्युदय में जीवभाव बना रहता है जबकि ज्ञान में आत्मभाव दृढ़

बनता है। आत्मानुभवी पुरुष अपने आनन्दस्वरूप का अखण्ड अनुभव करता है। यदि लक्ष्य परस्पर भिन्नभिन्न हैं तो उन दोनों की प्राप्ति के मार्ग भी भिन्नभिन्न होने चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ भरतश्रेष्ठ अर्जुन को वचन देते हैं कि वे उन दो आवृत्ति और अनावृत्ति मार्गों का वर्णन करेंगे। यहाँ काल शब्द का द्वयर्थक प्रयोग किया गया है। काल का अर्थ है प्रयाण काल और उसी प्रकार प्रस्तुत सन्दर्भ में उसका दूसरा अर्थ है मार्ग जिससे साधकगण देहत्याग के उपरान्त अपने लक्ष्य तक पहुँचते हैं।

गीता में मुक्ति के लिए दो मार्ग बताए गए है, जो शाब्दिक अर्थ में यदि परिभाषित किए जाए तो अंधविश्वास या शास्त्र ज्ञान में संदेह को उत्पन्न करेगा क्योंकि मृत्यु अवश्यभावी सत्य होने के साथ अनिश्चित काल के साथ है। जो मनुष्य या जीव के हाथ में नही तो उस का परिणाम भी समय पर निश्चित नही होता, इसलिए काल का अर्थ मार्ग और कर्म के फलों को ही समझते है। विभिन्न लोकों से तात्पर्य विभिन्न ग्रह सौर मंडल, आकाश गंगा है, गीता यदि कृष्ण या शुक्ल पक्ष के बात करती है तो हमे गर्व होना चाहिए कि गीता जिसे 5500 साल पुराना ग्रंथ समझे तो हमारी संस्कृति काल गणना और ब्रह्मांड की विभिन्न आकाश गंगाओं का कितना सटीक गणना दूरी की साथ रखती थी। आज भी यह नासा द्वारा रिसर्च में अनेक स्वरूप स्वीकार किया जाता है।

अब उन दोनों में से पहले शुक्लमार्ग का अर्थात् लौट कर न आनेवालों के मार्ग का वर्णन पढ़ते हैं।

।। हरि ॐ तत सत।। 8.23।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.24॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

"agnir jyotir ahaḥ śuklaḥ,
ṣaṇ-māsā uttarāyaṇam..।
tatra prayātā gacchanti,
brahma brahma-vido janāḥ"..।।

भावार्थ:

जिस समय ज्योतिर्मय अग्नि जल रही हो, दिन का पूर्ण सूर्य-प्रकाश हो, शुक्ल-पक्ष का चन्द्रमा बढ़ रहा हो और जब सूर्य उत्तर-दिशा में रहता है उन छः महीनों के समय में शरीर का त्याग करने वाले ब्रह्मज्ञानी मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। (२४)

Meaning:

Fire, light, day, the bright (fortnight of the month), the northern movement comprising six months; those people who have departed through that path, knowers of brahman attain brahman.

Explanation:

Shri Krishna describes the journey that the individual soul or jeeva takes after death in this and the next shloka. Each jeeva is allocated one of two paths based on its actions while on this earth. Here, he speaks about the path taken by those who have practiced single- pointed devotion to Ishvara, indicated by the phrase “knowers of brahman”.

So, in this verse Kṛṣna defines the brighter path called śukḷa mārga, or śukḷa gathi, or dēva yānaḥ. And tatra, in the second line, tatra means dēva yānaḥ, śukḷa mārgēna prayātāḥ; those who go via śukḷa mārga; through śukḷa mārga, Brahma gachanthi, they will attain Brahman; they will attain Īśvara; or they will attain kṛama mukthiḥ; here the word Brahma refers to kṛama mukthi prāpthiḥ; gradually going to Īśvara; how I have explained before; they go to Brahma lōkā and in Brahma lōkā they will get aham Brahmāsmi jñānam, which they escaped by not attending the Gītā classes here. So, that one they are forced to get and then having got the knowledge aham Brahmāsmi, they will get liberation.

The bright daylight, the moonlit fortnight of śhuklaḥ or the bright ascending moon, and the uttaraayan, the northern course of the sun, are all considered the time of light. The God-conscious souls; who detach from worldly attachments and depart by the path of light (knowledge and discrimination) attain God. They are liberated from the wheel of samsara, the cycle of life and death, and reach the divine Abode of God.

It is said that Ishvara has appointed special deities to guide the jeeva to the abode of Lord Brahma after its body has ceased to function. Agni, jyoti, shukla and uttaraayan are symbols that indicate the deities who preside over fire, light, the lunar fortnight and the six-month period between winter and summer. The jeeva resides in Lord Brahma’s abode until dissolution, after which it is liberated. In other words, it “attains brahman”.

In India, Uttaraayana is considered highly auspicious. Its beginning is celebrated with the Makar Sankraanti festival. The lunar fortnight of each month is also the time in which most Indian festivals are celebrated including Navaratri and Guru Purnima.

Next, Shri Krishna described the second path that jeevas take after death.

।। हिंदी समीक्षा ।।

वेद का एक मन्त्र है, **तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्युयो मा अमृत गमय, असतो मा सत गमय।** सूर्य के उत्तरनारायण अर्थात मकर संक्रांति से दिन बड़े और रात छोटी होती है और यह 6 माह का काल होता है। कैलेंडर से इसे हम अंधकार से प्रकाश की ओर का प्रतीक ही माने।

भगवान श्री कृष्ण काव्यात्मक रूपक में शुक्ल पक्ष एवम सूर्य की उत्तरायण अवस्था का वर्णन करते हुए क्रममुक्ति के भगवान की अनन्या भक्ति करने वाले भक्तों का मार्ग बताते है। शुक्ल पक्ष मावस से पूर्णिमा का चंद्र पक्ष है एवम सूर्य का उत्तरायण मकर राशि से मिथुन राशि तक सूर्य के रहने से जो माघ से आषाढ़ यानी 6 माह का होता है, कहते है। शुक्ल पक्ष में चंद्रमा एवम उत्तरायण में सूर्य का दिन बड़ा एवम प्रकाश में वृद्धि की ओर रहता है। अग्नि ब्रह्मतेज का प्रतीक है, दिन विद्या का प्रकाश है। शुक्ल पक्ष निर्मलता का द्योतक है। विवेक, शम, दम, तेज और प्रज्ञा ये षडेश्वर्य ही षणमास है। ऊर्ध्वरेता स्थिति ही उत्तरायण है। प्रकृति से सर्वथा परे इस अवस्था मे जाने वाले ब्रह्मवेत्ता योगीजन ब्रह्म को प्राप्त होते है और पुनरवर्तन नही करते। अतः यह पूरी यात्रा वेद मंत्र के अनुसार अंधकार से प्रकाश की ओर है।

अतः जीव के अंतिम क्षण में मार्ग के लिये विभिन्न कालाभिमानी देव- अधिदेव द्वारा जीव का सत्कार होते हुए जीव ब्रह्म लोक में पहुच कर रहता है और ब्रह्मा की आयु की समाप्ति के पश्चात महाप्रलय के समय परमात्मा में विलीन हो जाता है।

जीव प्राण त्याग के साथ ही अपनी यात्रा अर्चि अर्थात अग्नि मार्ग से शुरु करता है। अग्नि अर्थात शरीर का ताप जो उसे यात्रा के शुरुवात में दिन के प्रकाश की ओर ले जाता है और शरीर ठंडा हो जाता है।

अग्नि से दिन के अभिमानी देवता

फिर दिन के अभिमानी देव से शुक्ल पक्ष के अभिमानी देव तक

फिर शुक्ल पक्ष के देव से उत्तरायण के अभिमानी देवता तक,

फिर उत्तरायण देव से संवत्सर अभिमानी देवता

फिर वायु का अभिमानी देवता

फिर सूर्य अभिमानी देवता

फिर चंद्र अभिमानी देवता

फिर विद्युत अभिमानी देवता उसे वरुण लोक ले कर जाता है।

फिर जल अभिमानी देवता उसे देवराज इंद्रलोक पहुचाता है

फिर इंद्र लोक से ब्रह्म लोक अर्थात अंतिम लोक पहुचता है।

ब्रह्मलोक से ही वो परमात्मा के वैकुण्ठ लोक पहुचता है।

पूरी यात्रा अपरा प्रकृति एवम पुनरवर्तन के पुण्य के त्याग की है क्योंकि ब्रह्म लोक में सिर्फ जीव अर्थात परा प्रकृति का स्वरूप मात्र रह जाता है।

अनन्या भक्ति वाला जीव किसी भी काल मे प्राण त्यागे उस का यह मार्ग सुनिश्चित है। अतः काल का कथन मात्र मार्ग से है, समय से नही। परा प्रकृति अर्थात जीवात्मा अपरा प्रकृति से सम्बन्ध जोड़ कर रखती है। यही जीव का अज्ञान है, जिस के कारण वह अपने को कर्ता और भोक्ता समझता है। मोह, ममता, कामना, लोभ और अहम के कारण जीव अपने स्वरूप को पूर्णतया नही पहचान पाता, किन्तु इस अज्ञान से जैसे जैसे वह बाहर आता है, उसे ही अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा माना गया है। इसलिये जो अपने प्रकाश पक्ष में जीवन का त्याग करता है, वह विभिन्न मार्ग से होता हुआ, ब्रह्म लोक पहुंच जाता है और क्योंकि वह अहम और कामना से मुक्त होता है तो उस के कोई कर्म फल भी नही होते। किंतु जीव मुक्ति के लिए अहम का भी त्याग होना आवश्यक है, इसलिए यहां जीव अपने अहम के त्याग के लिए उपासना करते है, और फिर ब्रह्मलोक से परब्रह्म में विलीन हो जाता है। काल एक सांकेतिक पक्ष है जो दर्शाता है कि जीव जब तक प्राण त्यागते समय पूर्ण ब्रह्मसन्ध नही होता, उस की यात्रा के कौन से पड़ाव से जहां उस को पुण्य कर्मो के फल भोग कर वापस आना है। यह हम अगले श्लोक में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.24।।

।। स्वामी राम सुख दास द्वारा मनुष्य की गति पर विवेचन ।।गीता - विशेष 8.24 ।।

(1) जिन का उद्देश्य परमात्मा प्राप्ति का है परन्तु सुख भोग की सूक्ष्म वासना सर्वथा नहीं मिटी है वे शरीर छोड़कर ब्रह्मलोक में जाते हैं। ब्रह्मलोक के भोग भोगने पर उन की वह वासना मिट जाती है तो वे मुक्त हो जाते हैं। इनका वर्णन यहाँ चौबीसवें श्लोकमें हुआ है।

जिन का उद्देश्य परमात्मा प्राप्ति का ही है और जिन में न यहाँ के भोगों की वासना है तथा न ब्रह्मलोक के भोगों की परन्तु जो अन्तकाल में निर्गुण के ध्यान से विचलित हो गये हैं वे ब्रह्मलोक आदि लोकों में नहीं जाते। वे तो सीधे ही योगियों के कुल में जन्म लेते हैं अर्थात् जहाँ पूर्वजन्मकृत ध्यानरूप साधन ठीक तरह से हो सके ऐसे योगियों के कुल में उन का जन्म होता है। वहाँ वे साधन करके मुक्त हो जाते हैं उपर्युक्त दोनों साधकों का उद्देश्य तो एक ही रहा है पर वासना में अन्तर रहने से एक तो ब्रह्मलोक में जाकर मुक्त होते हैं और एक सीधे ही योगियों के कुल में उत्पन्न होकर साधन करके मुक्त होते हैं।

जिन का उद्देश्य ही स्वर्गादि ऊँचेऊँचे लोकों के सुख भोगने का है वे यज्ञ आदि शुभकर्म कर के ऊँचेऊँचे लोकों में जाते हैं और वहाँके दिव्य भोग भोगकर पुण्य क्षीण होने पर पीछे लौटकर आ जाते हैं अर्थात् जन्ममरण को प्राप्त होते हैं।

जिस का उद्देश्य तो परमात्मा प्राप्ति का ही रहा है पर सांसारिक सुखभोग की वासना को वह मिटा नहीं सका। इसलिये अन्तकाल में योग से विचलित होकर वह स्वर्गादि लोकों में जाकर वहाँ के भोग भोगता है और फिर लौटकर शुद्ध श्रीमानों के घर में जन्म लेता है। वहाँ वह जबर्दस्ती पूर्वजन्मकृत साधन में लग जाता है और मुक्त हो जाता है।

उपर्युक्त दोनों साधकों में एक का तो उद्देश्य ही स्वर्ग के सुखभोग का है इसलिये वह पुण्यकर्मों के अनुसार वहाँ के भोग भोगकर पीछे लौटकर आता है। परन्तु जिस का उद्देश्य परमात्मा का है और वह विचारद्वारा सांसारिक भोगों का त्याग भी करता है फिर भी वासना नहीं मिटी तो अन्तमें भोगों की याद आने से वह स्वर्गादि लोकों में जाता है। उसने जो सांसारिक भोगों का त्याग किया है उसका बड़ा भारी माहात्म्य है। इसलिये वह उन लोकोंमें बहुत समयतक भोग भोगकर यहाँ श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है।

(2) सामान्य मनुष्योंकी यह धारणा है कि जो दिनमें शुक्लपक्षमें और उत्तरायणमें मरते हैं वे तो मुक्त हो जाते हैं पर जो रात में कृष्णपक्ष में और दक्षिणायन में मरते हैं उन की मुक्ति नहीं होती। यह धारणा ठीक नहीं है। कारण कि यहाँ जो शुक्लमार्ग और कृष्णमार्गका वर्णन हुआ है वह ऊर्ध्वगति को प्राप्त करनेवालों के लिये ही हुआ है। इसलिये अगर ऐसा ही मान लिया जाय कि दिन आदिमें मरनेवाले मुक्त होते हैं और रात आदि में मरने वाले मुक्त नहीं होते तो फिर अधोगतिवाले कब मरेंगे क्योंकि दिन रात शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष और उत्तरायण दक्षिणायन को छोड़ कर दूसरा कोई समय ही नहीं है। वास्तव में मरने वाले अपने अपने कर्मों के अनुसार ही ऊँचनीच गतियों में जाते हैं वे चाहे दिनमें मरें चाहे रात में चाहे शुक्लपक्ष में मरें चाहे कृष्णपक्ष में चाहे उत्तरायण में मरें चाहे दक्षिणायन में इसका कोई नियम नहीं है।जो भगवद्भक्त हैं जो केवल भगवान् के ही परायण हैं जिन के मन में भगवद्दर्शन की ही लालसा है ऐसे भक्त दिन में या रात में शुक्लपक्ष में या कृष्णपक्ष में उत्तरायण में या दक्षिणायन में जब कभी शरीर छोड़ते हैं तो उन को लेनेके लिये भगवान् के पार्षद आते हैं। पार्षदों के साथ वे सीधे भगवद्धाममें पहुँच जाते हैं।यहाँ एक शङ्का होती है कि जब मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही गति पाता है तो फिर भीष्मजी ने जो तत्त्वज्ञ जीवन् मुक्त महापुरुष थे दक्षिणायन में शरीर न छोड़कर उत्तरायण की प्रतीक्षा क्यों की इस का समाधान यह है कि भीष्मजी भगवद्धाम नहीं गये थे। वे द्यौ नामक वसु (आजान देवता) थे जो शापके कारण मृत्युलोकमें आये थे। अतः उन्हें देवलोक में जाना था। दक्षिणायनके समय देवलोकमें रात रहती है और उस के दरवाजे बंद रहते हैं। अगर भीष्मजी दक्षिणायन के समय शरीर छोड़ते तो उन्हें अपने लोक में प्रवेश करने के लिये बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ती। वे इच्छामृत्यु तो थे ही अतः उन्होंने सोचा कि वहाँ प्रतीक्षा करनेकी अपेक्षा यहीं प्रतीक्षा करनी ठीक है क्योंकि यहाँ तो भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते रहेंगे और सत्सङ्ग भी होता रहेगा जिससे सभी का हित होगा वहाँ अकेले पड़े रहकर क्या करेंगे ऐसा सोचकर उन्होंने अपना शरीर दक्षिणायन में न छोड़ कर उत्तरायण में ही छोड़ा।

जीव के पुनः जन्म का रुपांतर भी किस प्रकार होता है उसे भी यहां इस प्रकार से बताया गया है।

कृष्णमार्ग से लौटते समय वह जीव पहले आकाश में आता है। फिर वायु के अधीन होकर बादलों में आता है और बादलों में से वर्षा के द्वारा भूमण्डल पर आकर वनस्पति द्वारा अन्न में प्रवेश करता है। फिर कर्मानुसार प्राप्त होने वाली योनि के पुरुषों में अन्न के द्वारा प्रवेश करता है और पुरुष से स्त्रीजाति में जाकर शरीर धारण कर के जन्म लेता है। इस प्रकार वह जन्ममरण के चक्कर में पड़ जाता है।

।। हरि ॐ तत सत।। गीता विशेष 8.24 ।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.25॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्ण षण्मासा दक्षिणायनम् ।

तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥

"dhūmo rātris tathā kṛṣṇaḥ,
ṣaṇ-māsā dakṣiṇāyanam.. l
tatra cāndramasaṁ jyotir,
yogī prāpya nivartate".. l l

भावार्थ:

जिस समय अग्नि से धुआँ फ़ैल रहा हो, रात्रि का अन्धकार हो, कृष्ण-पक्ष का चन्द्रमा घट रहा हो और जब सूर्य दक्षिण दिशा में रहता है उन छः महीनों के समय में शरीर त्यागने वाला स्वर्ग-लोकों को प्राप्त होकर अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। (२५)

Meaning:

Smoke, night, darkness and the southern movement comprising six months; the yogi (travels through) that path, attains the light of the moon, to return.

Explanation:

We saw earlier that jeevas who have practised single- pointed devotion travel on the path of light, attain the abode of Lord Brahma, and eventually achieve liberation. Now, Shri Krishna describes the path of the jeeva who has performed good deeds in its lifetime but had not practiced devotion. This path is called the path of the moon or the lunar path.

The ignorant souls who are attached to the world remain entangled in the bodily concept of life. They forget their relationship with God. Such souls depart by the path of darkness. Hence, continue to rotate in the cycle of life and death. However, those who may have undertaken some Vedic rituals, as its fruit, go to the celestial abodes. But this position is also part of the material world, thus temporary. When their merits are exhausted, they have to return to earth. Ultimately all humans born on earth, upon death, have to pass along either of the two paths, the path of light or the path of darkness. It is their karmas that decide which path they would take eventually.

The jeeva is guided on this path by the deities who preside over the smoke of the pyre, night, the dark lunar fortnight and the six months between summer and winter. Having travelled through the lunar path, these jeevas attain a lower realm called Chandraloka or the abode of the moon. In modern language, this is nothing but heaven. The jeeva enjoys heavenly pleasures, which are the

fruits of its earthly actions. Unlike the jeeva in Lord Brahma's abode, this jeeva returns to earth once the fruits of its good actions have depleted.

Both the dark lunar fortnight and the period between summer and winter are relatively less auspicious than their brighter counterparts. But many festivals including Maha Shivraatri and Krishna Janmaashtami are celebrated during the dark lunar fortnight.

Any mental sādhanā is supposed to be of higher quality than any physical sādhanā; Because mental sādhanā is more difficult; because mind runs all over; physical sādhanā you can do pūjā very fast;physical sādhanā, mind can be anywhere; so therefore mere ritalists would get puṇyam but of a lower order and therefore he goes through tatra; Kṛsna mārgēna; and reaches us chandramasam jyothiḥ; he reaches only svarga lōkā, otherwise known as chandra lōkā, which is lower than Brahma lōkā, because in the purāṇās.

Shri Krishna summarizes the difference between the two paths in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

देश और काल की दृष्टि से जितना अधिकार अग्नि अर्थात् प्रकाश के देवता का है, उतना ही अधिकार धूम अर्थात् अन्धकार के देवता का है। वह धूमाधिपति देवता कृष्णमार्ग से जानेवाले जीवों को अपनी सीमा से पार कराकर रात्रि के अधिपति देवता के अधीन कर देता है। रात्रि का अधिपति देवता उस जीव को अपनी सीमा से पार कराकर देश-काल को लेकर बहुत दूर तक अधिकार रखनेवाले कृष्णपक्ष के अधिपति देवता के अधीन कर देता है। वह देवता उस जीव को अपनी सीमा से पार कराकर देश और काल की दृष्टि से बहुत दूरतक अधिकार रखने वाले दक्षिणायन के अधिपति देवता के समर्पित कर देता है। वह देवता उस जीव को चन्द्रलोक के अधिपति देवता को सौंप देता है। इस प्रकार कृष्णमार्ग से जानेवाला वह जीव धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके देश को पार करता हुआ चन्द्रमा की ज्योति को अर्थात् जहाँ अमृत का पान होता है, ऐसे स्वर्गादि दिव्य लोकों को प्राप्त हो जाता है। फिर अपने पुण्यों के अनुसार न्यूनाधिक समय तक वहाँ रह कर अर्थात् भोग भोगकर पीछे लौट आता है।

प्रथम दो प्रकार के योगी जो जीवन मरण से मुक्त हो कर परमात्मा में विलय हो जाते है इस को दोहराते हुए प्रथम जो ब्रह्मरंध से प्राण त्यागते है, द्वितीय जो स्मरण करते हुए निष्काम अनन्या भक्ति से प्राण त्यागते है, अब हम उन जीव के बारे जानेगे जो सुख भोग की कामना के साथ परमात्मा एवम जन की सेवा करते है। यह कर्मयोगी अन्य लोक में सुख मिले इस आशा से दान, अस्पताल, स्कूल आदि बनवाते है।

साधना और धर्म में पुण्य को सामाजिक और भौतिक स्वरूप में करना सरल है, जैसे रोज मंदिर जाना, तीर्थ करना, गरीब को भोजन और धन का दान, अस्पताल, स्कूल या धर्मशाला बनवाना आदि। इस में

त्याग तो है किंतु मन और बुद्धि में कामनाओं और आसक्ति का त्याग नही होता। द्वितीय यदि जो मानसिक या आध्यात्मिक पूजा या ध्यान करते है, वे आत्मशुद्धि या चित्तशुद्धी करते है जो पहले की अपेक्षा कठिन है। इसलिए जो जीव निर्लिप्त और निष्काम भाव से युक्त नही होता, वह पुण्य तो अवश्य कमाता है किंतु जीवमुक्ति या मोक्ष नहीं।

यहाँ सकाम मनुष्यों को भी 'योगी' क्यों कहा गया है? इस के अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे --,(1) गीता में भगवान ने मरने वाले प्राणियों की तीन गतियाँ बतायी हैं - ऊर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति। इन में से ऊर्ध्वगति का वर्णन इस प्रकरण में हुआ है। मध्यगति और अधोगति से ऊर्ध्वगति श्रेष्ठ होने के कारण यहाँ सकाम मनुष्यों को भी योगी कहा गया है।,(2) जो केवल भोग भोगने के लिये ही ऊँचे लोकों में जाता है, उसने संयमपूर्वक इस लोक के भोगों का त्याग किया है। इस त्याग से उस की यहाँ के भोगों के मिलने और न मिलने में समता हो गयी है। इस आंशिक समताको लेकर ही उसको यहाँ योगी कहा गया है।

(3) जिन का उद्देश्य परमात्मप्राप्ति का है, पर अन्तकाल में किसी सूक्ष्म भोग-वासना के कारण वे योग से, विचलित मना हो जाते हैं, तो वे ब्रह्मलोक आदि ऊँचे लोकों में जाते हैं और वहाँ बहुत समयतक रहकर पीछे यहाँ भूमण्डल पर आकर शुद्ध श्रीमानों के घर में जन्म लेते हैं। ऐसे योगभ्रष्ट मनुष्यों का भी जानेका यही मार्ग (कृष्णमार्ग) होने से यहाँ सकाम मनुष्य को भी योगी कह दिया है।

इन की मृत्यु का मार्ग सूर्य के दक्षिणायन का मार्ग होता है। जिसे सावन से पोष माह तक कहा जाता है, इस मे रात्रि बड़ी एवम दिन छोटे होते है। यहां छह माह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर विकार का द्योतक है।

गीता में यह दोनों मार्ग मुख्यतः पृथ्वी के उत्तरी धुर्व एवम दक्षिण धुर्व है, जो उस काल से ऋषि मुनियों से लंबे दिन या लंबी रातों को ध्यान में रखते हुए लिखे होंगे किन्तु वास्तव में यह जीव के मृत्यु के बाद की गति है। इस मे तिथि, काल, माह, दिन या रात से कोई सबन्ध नही है। इस का मुख्य उद्देश्य यही है कि जीव को निष्काम कर अपने कर्म करते हुए परमात्मा का स्मरण करे।

सामान्य मनुष्य मरकर मृत्युलोक में जन्म लेते हैं, जो पापी होते हैं, वे आसुरी योनियों में जाते हैं और उन से भी जो अधिक पापी होते हैं, वे नरक के कुण्डों में जाते हैं - इन सब मनुष्यों से कृष्णमार्गसे जानेवाले बहुत श्रेष्ठ हैं। वे चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होते हैं - ऐसा कहने का यही तात्पर्य है कि संसार में जन्म मरण के जितने मार्ग हैं उन सब मार्गों से यह कृष्णमार्ग (ऊर्ध्वगतिका होनेसे) श्रेष्ठ है और उनकी अपेक्षा प्रकाशमय है।

चतुर्थ प्रकार में वो जीव के जो कर्म बंधन में ही सांसारिक सुख भोग में विस्वास रखते है यह अपने अपने कर्मो के अनुसार मृत्यु के पश्चात पुनः अपने कर्म फल अनुसार पुनः जन्म विभिन्न योनि में लेते है।

सामान्य मनुष्यों की यह धारणा है कि जो दिन में, शुक्ल पक्ष में और उत्तरायण में मरते हैं, वे तो मुक्त हो जाते हैं, पर जो रात में कृष्ण पक्ष में और दक्षिणायन में मरते हैं उन की मुक्ति नहीं होती। यह धारणा ठीक नहीं है। कारण कि यहाँ जो शुक्लमार्ग और कृष्ण मार्ग का वर्णन हुआ है, वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त करने वालों के लिये ही हुआ है। इसलिये अगर ऐसा ही मान लिया जाय कि दिन आदि में मरने वाले मुक्त होते हैं और रात आदि में मरने वाले मुक्त नहीं होते, तो फिर अधोगति वाले कब मरेंगे? क्योंकि

दिन-रात, शुक्लपक्ष- कृष्णपक्ष और उत्तरायण- दक्षिणायन को छोड़ कर दूसरा कोई समय ही नहीं है। वास्तव में मरनेवाले अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही ऊँच-नीच गतियों में जाते हैं, वे चाहे दिन में मरें, चाहे रात में; चाहे शुक्लपक्ष में मरें, चाहे कृष्णपक्ष में; चाहे उत्तरायण में मरें, चाहे दक्षिणायन में - इसका कोई नियम नहीं है।अतः इन दो श्लोक का वास्तविक अर्थ चार प्रकार् के भक्तों में निष्काम और कामना के साथ स्मरण करते हुए प्रयाण करने वाले योगी पुरुष को उर्ध्व और निम्न गति को ही मान लेते है। इसे हम आगे स्पष्ट रूप में पढ़ते है।

पुनःश्च: गीता पढ़ते हुए कुछ बुद्धि जीवी नास्तिक विचारों में इस प्रकार के मार्ग आदि में विश्वास नहीं रखते। ब्रह्मांड अत्यंत विशाल है, उस में सौर मंडल जैसे सैंकड़ों मंडल है। इस विशाल में जीवन जैसी कोई प्रक्रिया एक मात्र पृथ्वी ग्रह में ही है, यह अभी तक की खोज है, आगे का पता नही, किंतु ब्रह्म के अंश में जीव की धारणा हमारे शास्त्रों में विभिन्न ऋषि मुनियों से विभिन्न चौदह लोकों में अनुभव से प्राप्त की है। जन्म - मृत्यु और मृत्यु के बाद भी अस्तित्व को नास्तिक विचार धारा में नकारा भी है किंतु फिर भी पृथ्वी में जीवन का पाया जाना अभी तक ब्रह्मांड में सब से बड़ी मान्यता है। अन्य लोक में भी जीवन होगा, यह हम नही जानते इसलिए साक्ष्य के अभाव में जो अनुभव हमारे पूर्वजों ने समय समय शास्त्रों में लिखे है, उस के अनुसार पुनः जन्म की बात भी सत्य है।

।। हरि ॐ तत सत।।8.25।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ 8.26॥

शुक्ल कृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्ति मन्ययावर्तते पुनः॥

"śukla-kṛṣṇe gatī hy ete,
jagataḥ śāśvate mate..।
ekayā yāty anāvṛttim,
anyayāvartate punaḥ"..।।

भावार्थ:

वेदों के अनुसार इस मृत्यु-लोक से जाने के दो ही शाश्वत मार्ग है - एक प्रकाश का मार्ग और दूसरा अंधकार का मार्ग, जो मनुष्य प्रकाश मार्ग से जाता है वह वापस नहीं आता है, और जो मनुष्य अंधकार मार्ग से जाता है वह वापस लौट आता है। (२६)

Meaning:

For, bright and dark, both these paths have been known since eternity. By one, the traveller does not have to return, by the other, he has to return again.

Explanation:

Shri Krishna spoke about two paths that the jeeva takes after death: the “bright” path that goes to the abode of Lord Brahma, and the “dark” path that goes to the abode of the moon. He now reaffirms the difference between these two paths by saying that those who travel by the bright path are liberated, whereas those who take the dark path are born again after spending time in the abode of the moon. He also states that these paths have been established since time immemorial.

Sukḷa Mārga and Kṛṣna Mārga; these two mārgās have been created along with the universe; not in between like putting a new creation; it is not that Bhagavan thought after the creation to lay two new roads. It is not a later added route; but along with the creation itself; these routes have been made because along with the creation, Vēdā has come and along with the creation, the karma upāsana teaching also has been given and along with the creation, human beings also have come; and therefore along with the creation, these two types of sādakās are also there; therefore these two māргas śukḷa mārga and Kṛṣna mārga; these two mārgās have been created along with the universe; not in between like putting a new creation; it is not that Bhagavān thought after the creation to lay two new roads. No; it is not a later added route; but along with the creation itself; these routes have been made because along with the creation, Vēdā has come; and along with the creation, the karma upāsana teaching also has been given; and along with the creation, human beings also have come; and therefore along with the creation, these two types of sādakās are also there; therefore these two mārgas must be there.must be there.

The same description of departure and return is quoted by Acarya Baladeva Vidyabhushana from the Chandogya Upanishad (5.10.3-5). Those who are fruitive laborers and philosophical speculators from time immemorial are constantly going and coming. Actually, they do not attain ultimate salvation, for they do not surrender to Krishna.

Hence, these two Margs are not date, time, period and astrological situation bound. It is based on devotion towards brahaman or yog. People of every nature are died in both period of sukla aur Krisna paksh, but every one get his road of liberalisation according to his devotion and working.

These two paths take care of two categories of people. One category is those who perform good actions as well as single pointed devotion - they attain the abode of Lord Brahma. The other is those who only perform good actions - they attain heaven. But absent from this list are those who perform negative actions that harm others and themselves. What happens to them?

Shri Krishna has omitted the path of such people, probably because he assumes that one who is interested in following the path of karma yoga is putting forth effort to eliminate negative and destructive actions from his life. More information on the path taken by such people is provided in the Srimad Bhagavatam.

So then, what is the significance of these two paths to us? This is taken up next.

।। हिंदी समीक्षा ।।

जीवन मे मृत्यु के बाद के दो मार्ग उत्तरायण - दक्षिणायन को भगवान द्वारा कहा गया कोई नवीन मार्ग नहीं है। यह सनातन एवम पूर्व में भी बताया जा चुका है। उत्तरायण मार्ग से जाना वाला प्राणी प्रकाश की ओर बढ़ता है एवम पुनरवर्तन को प्राप्त न करते हुए परमात्मा में विलय हो जाता है। इस मार्ग को देवयान भी कहा गया है और अर्चि मार्ग भी कहते है। दक्षिणायन मार्ग से जाने वाला प्राणी अंधकार से मार्ग से जाता है एवम अपने पुण्यों को भोग कर पुनः जन्म को प्राप्त होता है। इस को पितृयान या धूम्र मार्ग भी कहा जाता है। यह शुक्र और कृष्ण गति जिन में एक के द्वारा अपुनरावृति और दूसरी के द्वारा पुनरावृति की प्राप्ति होती है। ऋग्वेद में भी इन दोनों मार्गो के बारे में बताया गया है अतः यह दोनों मार्ग सनातन है। किन्तु इन मार्गो को चन्द्र की कला या समय की गणना कैलेंडर को समझना सब से बड़ी भूल होगी।

जीव ब्रह्म का अंश है, जीव का ब्रह्म से अलग होना और प्रकृति से संयोग होना सृष्टि की रचना का आधार है। कामना और आसक्ति से जीव कर्म फलों में उलझ कर बार बार जन्म लेता है किंतु उस का लक्ष्य तो मुक्ति अर्थात ब्रह्म में विलीन होना है। इसलिए विभिन्न प्रकार से साधना करता हुआ जीव अपने अज्ञान से परिचित होता हुआ ज्ञान को प्राप्त होता है। अतः जीव के मुक्ति के ये दो ही मार्ग है, जिस में पुण्य और पाप कर्म को भोगते हुए बार बार जन्म लेना अर्थात कृष्ण पक्ष अर्थात अंधकार का मार्ग और द्वितीय कर्म मुक्ति होते हुए जीव मुक्ति को प्राप्त होना।

चौथे अध्याय के पहले श्लोक में भगवान् ने 'योग' को अव्यय कहा है। जैसे योग अव्यय है, ऐसे ही ये शुक्ल और कृष्ण -- दोनों गतियाँ भी अव्यय, शाश्वत हैं अर्थात् ये दोनों गतियाँ निरन्तर रहनेवाली हैं, अनादि काल से हैं और जगत् के लिये अनन्त काल तक चलती रहेंगी

मानव की प्रत्येक पीढ़ी में जीवन जीने के दो मार्ग या प्रकार होते हैं भौतिक और आध्यात्मिक। भौतिकवादियों के अनुसार मानव की आवश्यकताएं केवल भोजन वस्त्र और गृह हैं। उन के मतानुसार जीवन का परम पुरुषार्थ वैषयिक सुखोपभोग के द्वारा शरीर और मन की उत्तेजनाओं को सन्तुष्ट करना

ही है। केवल इतने से ही उनको सन्तोष हो जाता है। इस से उच्चतर तथा दिव्य आदर्श के प्रति न कोई उनकी रुचि होती है और न प्रवृत्ति। परन्तु अध्यात्म के मार्ग पर चलने वाले विवेकीजन अपने समक्ष आकर्षक विषयों को देख कर लुब्ध नहीं हो जाते। उनकी बुद्धि अग्निशिखा के समान सदा उर्ध्वगामी होती है जो सतही जीवन में उच्च और श्रेष्ठ लक्ष्य की खोज में रमण करती है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि ये दोनों ही मार्ग सनातन हैं और अनादिकाल से इन पर चलने वाले दो भिन्न प्रवृत्तियों के लोग रहे हैं। व्यापक अर्थ की दृष्टि से इन दोनों का सम्मिलित रूप ही संसार है। परन्तु वेदान्त का सिद्धांत है कि जीव संसार के जन्म-मरण के दुःख से निवृत्त हो सकता है। यह ऋषियों का प्रत्यक्ष अनुभव है। एक साधक की दृष्टि से विचार करने पर इस श्लोक में सफल योगी बनने के लिए दिये गये निर्देश का बोध हो सकता है। कभी कभी साधना काल में मन की बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण साधक विषयों की ओर आकर्षित होकर उनमें आसक्त हो जाता है।

अतः ज्ञान का मार्ग निष्काम कर्म योग सन्यास प्रकाश का मार्ग है, जब कि कामना-अहम के साथ पुण्य कर्म, दान-पुण्य और लोकसंग्रह के कर्म अंधकार का मार्ग है, जिस में जीव इहलोक के देवताओं को पूजता है और अपने पुण्य फलों को भोग कर पुनः जन्म को प्राप्त होता है।

चर-अचर प्राणी क्रमसे अथवा भगवत्कृपासे कभी-न-कभी मनुष्य-जन्ममें आते ही हैं और मनुष्य जन्म में किये हुए कर्मों के अनुसार ही ऊर्ध्वगति, मध्यगति और अधोगति होती है। अब वे ऊर्ध्वगतिको प्राप्त करें अथवा न करें, पर उन सबका सम्बन्ध ऊर्ध्वगति अर्थात् शुक्ल और कृष्ण-गतिके साथ है ही।जबतक मनुष्योंके भीतर असत् (विनाशी) वस्तुओंका आदर है, कामना है, तबतक वे कितनी ही ऊँची भोग-भूमियोंमें क्यों न चले जायँ, पर असत् वस्तुका महत्त्व रहनेसे उनकी कभी भी अधोगति हो सकती है। इसी तरह परमात्माके अंश होनेसे उनकी कभी भी ऊर्ध्वगति हो सकती है। परमात्मा प्राप्ति के लिये किसी भी लोक में योनि में कोई बाधा नहीं है। इस का कारण यह है कि परमात्मा के साथ किसी भी प्राणी का कभी सम्बन्धविच्छेद होता ही नहीं। अतः न जाने कब और किस योनि में वह परमात्मा की तरफ चल दे - इस दृष्टि से साधक को किसी भी प्राणी को घृणा की दृष्टि से देखने का अधिकार नहीं है।

व्यवहार में विवेचन करे तो हम ने पढ़ा कि अंतिम समय में जो भी कामना रहती है, उस के अनुसार अगला जन्म मिलता है। अतः जब तक जीव कर्म मुक्ति से मुक्त नही है तो वह यदि तीव्र कामना के साथ शरीर का त्याग करता है तो उसी के अनुसार अगला जन्म तुरंत शुरू हो जाता है, अन्यथा वह अपने सूक्ष्म शरीर के साथ अपने पाप और पुण्य कर्म के अनुसार विभिन्न लोकों में कर्म के फलों के अनुसार समय व्यतीत करता है। यह क्योंकि मुक्ति का मार्ग नही है, इसलिए इसे कृष्ण पक्ष कहा गया है। इस का कैलेंडर या समय, तिथि या काल से कोई मतलब नहीं है। इस के विपरीत जो साधक मुक्ति की साधना निष्काम और निर्लिप्त भाव से करता है तो उस के प्रारब्ध के कर्म संपूर्ण होने और संचित कर्म नष्ट होने के कारण, वह मृत्यु के बाद उच्च लोक में चला जाता है और अपनी साधना जीव मुक्ति की करने के बाद परब्रह्म में विलीन हो जाता है। यदि कोई इन श्लोक का अर्थ घड़ी, तिथि या वार आदि देख कर अर्थ लगाता है तो वह अंधविश्वास ही फैलाता है।

पूर्व श्लोक में की गई विवेचना में यदि हम और ध्यान दे, तो हमे स्वीकार करना होगा कि भौतिक शरीर अभी तक ब्रह्मांड में पृथ्वी ग्रह अर्थात इस ग्रह में ही प्राप्त है। जीव का सूक्ष्म शरीर कहां कहां यात्रा

करता है और जन्म से पहले और मृत्यु के बाद का सूक्ष्म शरीर किसी को भी पता नही। इसलिए जिन योगियों ने इस विषय में जैसा जैसा अनुभव किया, संपूर्ण सृष्टि की रचना का आधार एक मात्र परब्रह्म को पाया,जिस से जीव, प्रकृति और माया से यह रचना हुई। मस्तिष्क में सुप्त अवस्था में या ध्यान में कभी कभी कुछ अज्ञात आभास सभी को होते है, जो इस बाद का प्रमाण है कि मृत्यु अर्थात भौतिक शरीर के बाद भी जीवन है, किंतु जैसे हमे बताया गया है, जब तक भौतिक शरीर नही हो, कर्म का अधिकार किसी भी सूक्ष्म शरीर को शरीर को नही है। अतः कर्म प्रकृति अपने नियम से और माया से करती है और जीव भौतिक शरीर से। ईश्वर भी वही है, जिस जीव ने प्रकृति और माया पर नियंत्रण कर लिया, इसलिए वह प्रकृति के कार्य करता है और जीव प्रकृति के अंदर उस की माया के अधीन है, इसलिए वह प्रकृति के अनुसार कार्य करता है।

दोनों मार्गो का ज्ञान का औचित्य क्या है, यह हम आगे पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.26।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.27॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥

"naite sṛtī pārtha jānan,
yogī muhyati kaścana..।
tasmāt sarveṣu kāleṣu,
yoga-yukto bhavārjuna"..।।

भावार्थ:

हे पृथापुत्र! भक्ति में स्थित मेरा कोई भी भक्त इन सभी मार्गों को जानते हुए भी कभी मोहग्रस्त नहीं होता है, इसलिये हे अर्जुन! तू हर समय मेरी भक्ति में स्थिर हो। (२७)

Meaning:

Knowing both these paths, any yogi is not deluded, O Paartha. Therefore, remain engaged in yoga at all times, O Arjuna.

Explanation:

Shri Krishna starts to conclude the topic of the jeeva's journey after death. He says that those who have knowledge of the fate of the jeeva after death is not deluded or misinformed. With this knowledge, we can change his behavior on earth in order to qualify for the right path after our death.

Of the two paths mentioned in this chapter, there was one that led to liberation. Shri Krishna advises us to follow the path of selfless action combined with single pointed devotion, in other words, karma yoga and bhakti yoga. This is indicated by the phrase “remain engaged in yoga” in this shloka.

Those relentless souls who strive for Yog or union with God are true yogis. Yogi means a viveki, an intelligent seeker will not get confused with regard to karma marga and upasana marga; whether I should become a mere ritualist whether I should add upāsana also; So, whether I should become a karmi or whether I should become a upāsakaḥ, such a doubt should not come to an intelligent seeker. They recognize themselves to be tiny fragments of God and His eternal beatitude. They also realize the temporary nature of the material world and the futility of a materialistic life. Therefore, instead of running behind sensual pleasures, they endeavour to enhance their love for God. Such souls are on the path of light.

On the other hand, are the ignorant souls, who are under the influence of maya, the material energy. They recognize themselves as only the body and the material world around them as the source of their pleasure. They continue to live through the miseries of material existence, being disdainful toward God or His eternal opulence. Thus, such souls are on the path of darkness.

A devotee of the Supreme Lord should not worry whether he will depart by arrangement or by accident. The devotee should be firmly established in Krishna consciousness and chant Hare Krishna. He should know that concern over either of these two paths is troublesome. The best way to be absorbed in Krishna consciousness is to be always dovetailed in His service, and this will make one's path to the spiritual kingdom safe, certain and direct. The word yoga- yukta is especially significant in this verse. One who is firm in yoga is constantly engaged in Krishna consciousness in all his activities. Sri Rupa Gosvami advises, anasaktasya vishayan yatharham upayunjatah: one should be unattached in material affairs and do everything in Krishna consciousness. By this system, which is called yukta- vairagya, one attains perfection.

Shree Krishna adds the phrase, “at all times.” It is for us to recognize the importance of being a yogi at all times. And avoid the danger of sliding back into the path of darkness.

Therefore, the devotee is not disturbed by these descriptions, because he knows that his passage to the supreme abode is guaranteed by devotional service.

All of this knowledge has already been explained to us. Karma yoga was the theme of the first six chapters, and bhakti yoga is the theme of chapters six through twelve. We have a choice. We can either read those chapters with an intellectual bent, or we can actually put the teachings to practice in our lives by remaining engaged in yoga “at all times”. The choice is up to us.

Shri Krishna summarizes and concludes this chapter in the next shloka.

।। हिंदी समीक्षा ।।

शुक्लगति और कृष्णगति इन दोनों के ज्ञान का फल यह है कि इन का ज्ञाता योगी पुरुष कभी मोहित नहीं होता है मन में उठने वाली निम्न स्तर की प्रवृत्तियों के कारण धैर्य खोकर वह कभी निराश नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसीलिये पुनरावृत्ति और अपुनरावृत्ति के मार्गों का वर्णन किया। शुक्लमार्ग प्रकाशमय है और कृष्णमार्ग अन्धकारमय है।

इस तरह शुक्ल और कृष्ण दोनों मार्गों के परिणाम को जाननेवाला मनुष्य योगी अर्थात् निष्काम हो जाता है भोगी नहीं। कारण कि वह यहाँ के और परलोक के भोगों से ऊँचा उठ जाता है। इसलिये वह मोहित नहीं होता।सांसारिक भोगों के प्राप्त होने में और प्राप्त न होने में जिस का उद्देश्य निर्विकार रहने का ही होता है वह योगी कहलाता है। निष्काम भाव से कर्मोपासना करने वाले कर्मयोगी एवम कर्तृत्वाभिमान का त्याग करने वाले सांख्य योगी दोनों ही शुक्ल मार्ग से भगवान के परमधाम को प्राप्त करते है। योगी वही है जो निष्काम और निर्लिप्त भाव से परमात्मा से जुड़ा है, उस का विवेक जाग्रत है, इसलिए तामसी और राजसी प्रवृतियां उस के कर्म को प्रभावित नही करती।

इसलिये भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि तू सब समय में अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों के प्राप्त होने पर उन से प्रभावित न होकर उन का सदुपयोग करते हुए (अनुकूल परिस्थिति के प्राप्त होने पर मात्र संसार की सेवा करते हुए और प्रतिकूल परिस्थिति के प्राप्त होने पर हृदय से अनुकूलता की इच्छा का त्याग करते हुए) योगयुक्त हो जा अर्थात् नित्यनिरन्तर समता में स्थित रह और निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन कर।

व्यवहारिकता में यदि हम समझ जाएं कि किस प्रकार के आचरण, प्रवृति- निवृति, कर्म, कामना और अहम से जीवन व्यतीत करने पर हमें क्या प्राप्त होगा या हमारी दिशा क्या है तो कोई भी जन्म-मरण के दुख भोगने के चन्द्र लोक से ब्रह्म लोक की यात्रा की बजाए मोक्ष का मार्ग ही स्वीकार करना चाहेगा। मोक्ष का मार्ग निष्काम कर्म योग सन्यास का वर्णन हम पहले पढ़ चुके है। किंतु उस मार्ग में सरल एवम समर्पण भाव से आगे बढ़ने के लिये भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को योगायुक्त अर्थात योग से युक्त हो कर भगवान श्री कृष्ण को हृदय से स्मरण करते हुए, निष्काम भाव से कर्म को प्रेरित कर रहे है। कुछ लोग इसे भक्ति मार्ग को बता रहे है, जो सरल एवम हृदयग्राही है, किन्तु युद्ध भूमि में भक्ति मार्ग भी

सांसारिक कर्तव्य धर्म का पालन करते हुए, हृदय से भगवान का स्मरण करना और अपने कर्तव्य धर्म का पालन करना ही है। अर्जुन तो युद्ध छोड़ कर वैराग्य में जाने को उद्वत थे, परन्तु यदि प्रकृति के नियत स्वाभाविक कर्म को हम यदि त्याग कर, लंगोटी धारण करते है तो अहम, अहंकार और क्षोभ बना रहेगा। इसलिये कर्तव्य धर्म के पालन में हमारी नियति एवम हमारा मोक्ष का मार्ग किस प्रकार प्राप्त होगा, इसलिये हमे योगी बन कर योगायुक्त भाव से कर्म करते रहना चाहिए।

शुक्ल पक्ष, उत्तरायण, अर्चि मार्ग यह सब प्रतीक है अंधकार से प्रकाश की ओर। ज्ञान, अनन्या भक्ति, स्मरण , निष्काम भी इन अंधकार मय जीवन के प्रतीक मद, लोभ, स्वार्थ, अहंकार, काम, वासना, क्रोध, घृणा आदि नीच कर्म आदि के लिये प्रकाश की किरण है। अतः मृत्यु समय, स्थान एवम अवस्था से देवयान अर्थात परमात्मा से मिलने का समय तय नहीं करती, यह व्यक्ति का योग युक्त निष्काम कर्म ही तय करता है।

जिस का ऐसा दृढ़ निश्चय हो गया है कि मुझे तो केवल परमात्मतत्त्व की प्राप्ति ही करनी है, तो फिर कैसे ही देश, काल, परिस्थिति आदि के प्राप्त हो जाने पर भी वह विचलित नहीं होता अर्थात् उस की जो साधना है वह किसी देश काल घटना परिस्थिति आदि के अधीन नहीं होती। उस का लक्ष्य परमात्मा की तरफ अटल रहने के कारण देशकाल आदि का उसपर कोई असर नहीं पड़ता।

अनुकूल-प्रतिकूल देश काल परिस्थिति आदि में उस की स्वाभाविक समता हो जाती है। इसलिये भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि तू सब समय में अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों के प्राप्त होने पर उन से प्रभावित न होकर उन का सदुपयोग करते हुए (अनुकूल परिस्थिति के प्राप्त होने पर मात्र संसार की सेवा करते हुए, और प्रतिकूल परिस्थितिके प्राप्त होनेपर हृदय से अनुकूलता की इच्छा का त्याग करते हुए) योगयुक्त हो जा अर्थात् नित्य- निरन्तर समतामें स्थित रह।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से यदि आप को पहले से रास्ते का ज्ञान करा दिया जाए कि जिस रास्ते से आप जा रहे है वो गंतव्य स्थान पर न पहुच कर वापस वही आता है तो रास्ता कितना भी अच्छा क्यों न हो, कोई उस पर कोई क्यों चलना चाहेगा। यदि आप को मंजिल चाहिये तो आप को किस रास्ते से जाना चाहिये यही भगवान श्री कृष्ण ने इस लोक एवम परलोक के सभी स्थानों को बताते हुए पूरा मार्ग बता दिया। बताने के पश्चात अर्जुन को पुनः निष्काम भाव से योग युक्त हो कर कर्तव्य पालन करने को कहते है।

भगवान श्री कृष्ण भक्ति में स्थित होने की बात कहते है तो भक्ति का अर्थ है संशय रहित श्रद्धा, प्रेम और विश्वास के साथ स्मरण और समर्पण। भक्ति आत्मशुद्धि या चितशुद्धि का उपाय है जिस के कारण जो हम नही जानते या नहीं समझते उस मार्ग या कार्य को हम अपने आदर्श पुरुष, गुरु, श्रेष्ठ जनों के द्वारा बताए गए ज्ञान के आधार पर कर सके। योगयुक्त होने का अर्थ स्थिर मन और निर्णायक और विवेकशील बुद्धि का होना है और यह कार्य एक या दो बार नही हमेशा करना चाहिए। अंग्रेजी में भी किसी ने कहा है "Do the right, first time and every time."

"मैं कौन हूं?", "जन्म से पहले और मृत्यु के बाद मेरा क्या होगा?", "इस धरती में मेरा उद्देश्य क्या है?" आदि अनेक प्रश्नों के सही और सटीक उत्तर गीता में इस अध्याय तक मिल जाते है कि जीव ब्रह्म का अंश है, उस लक्ष्य मोक्ष है। धरती में वह प्रकृति के निमित्त हो कर कर्म करता है और

उस के फलों को भोगता है। उसे मुक्ति चाहिए तो भक्ति भाव से परमात्मा को समर्पित हो कर, योग में स्थित हो कर अपने कर्म इस प्रकार करे कि मृत्यु के बाद उस का मार्ग प्रकाश का हो, अर्थात कर्म और जीव मुक्ति के मार्ग पर चले। भक्ति और योग अर्थात ज्ञान के साथ श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए। अंध श्रद्धा या अतिरेक ज्ञान से अहंकार को जन्म देता है। जिस से अंधकार का मार्ग ही खुलता है। इसे अब हमे ही तय करना है कि हम अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़े या अंधेरे में खो कर 84 लाख योनियों में घूमते रहे।

अगले इस अध्याय के अंतिम श्लोक में योगयुक्त पुरुष की महिमा एवम बताए मार्ग पर चलने के परिणाम के बारे में पढ़ते है।

।। हरि ॐ तत सत ।। 8.27।।

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥ 8.28॥

वेदेषु यज्ञेषु तपः सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येत तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥

"vedeṣu yajñeṣu tapaḥsu caiva,
dāneṣu yat puṇya-phalaḿ pradiṣṭam.. l
atyeti tat sarvam idaḿ viditvā,
yogī paraḿ sthānam upaiti cādyam".. l l

भावार्थ:

योग में स्थित मनुष्य वेदों के अध्यन से, यज्ञ से, तप से और दान से प्राप्त सभी पुण्य-फलों को भोगता हुआ अन्त में निश्चित रूप से तत्व से जानकर मेरे परम-धाम को ही प्राप्त करता है, जो कि मेरा मूल निवास स्थान है। (२८)

Meaning:

Whatever auspicious results have been indicated in the Vedas, rituals, austerities and also in charity, the yogi transcends all these having known this (knowledge) and attains the primal supreme state.

Explanation:

Shri Krishna concludes the eighth chapter with this shloka. He tells us that he has spelled out an entire “flowchart for the afterlife”. With this knowledge, we have the means to achieve anything including heaven, rebirth, and liberation. The outcome solely depends upon our behaviour while we are alive.

Traditionally, seekers used the instructions in the Vedas to perform rituals, austerities, and charity. Many of them did so with the goal of attaining a better state in the afterlife. In our case, even though we may not perform rituals per se, our goal is similar. We try to do good actions and charity so that we can earn "punya" or merit for the afterlife. However, we know know that mere performance of good actions will get us to heaven, but we will eventually come back once our merits are exhausted.

The Ramayan states:

"You may engage in good conduct, righteousness, austerities, sacrifices, ashtanga yoga, chanting of mantras, and charity. But without devotion to God, the mind's disease of material consciousness will not cease."

Therefore, Shri Krishna recommends the bright path of devotion and action that leads us to the abode of Lord Brahma, and eventually into liberation. This path of graduated liberation, indicated by the phrase "supreme primal state" is also known as "krama mukti". One who achieves this path transcends, or goes beyond the results of heaven, because he attains liberation which frees him from finitude.

All these good deeds can only reap material rewards, which are temporary. However, devotion to God leads to liberation from the bondage of the material world. Therefore, the yogis who have realized this truth detach their mind from the material world and attach it to God alone. Treading on this path of light, they eventually attain eternal happiness.

Shri Krishna is not done yet. There is yet another path of liberation that is his personal favourite. We shall learn more in the coming chapters.

।। हिंदी समीक्षा ।।

तत्वयोगी एवम निष्काम कर्मयोगी जिस ने देवयान मार्ग (शुक्ल मार्ग) एवम पितृयान मार्ग (धूम्र मार्ग-कृष्ण मार्ग) का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। जिस ने अपने स्वरूप को जान लिया है, वह यह समझ लेता है कि भोग भूमियों की भी आखिरी हद जो ब्रह्मलोक है वहाँ जाने पर भी लौट कर पीछे आना पड़ता है परन्तु भगवान् को प्राप्त होने पर लौट कर नहीं आना पड़ता और साथ साथ यह भी समझ लेता है कि मैं तो साक्षात् परमात्मा का अंश हूँ तथा ये प्राकृत पदार्थ नित्यनिरन्तर अभाव में नाश में जा रहे हैं तो फिर वह नाशवान् पदार्थों में भोगों में न फँसकर भगवान् के ही आश्रित हो जाता है। वह परम आदि स्थान अर्थात पूर्ण ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

अध्याय ने अध्याय के आरंभ में सात प्रश्न किए थे, जिस में सातवां प्रश्न था कि प्रयाण काल में आत्म संयमी अर्थात योगयुक्त जन द्वारा आप को किस प्रकार जाना जा सकता है? पूर्व श्लोक के विवेचन में हम ने यह समझा की जीव क्या है, उस की गति और लक्ष्य क्या होना चाहिए। इस श्लोक में अर्जुन के प्रश्न और जीव को क्या और कैसे रहना चाहिए का उत्तर दिया गया है।

यज्ञ दान तप तीर्थ व्रत आदि जितने भी शास्त्रीय उत्तम से उत्तम कार्य हैं और उन का जो फल है वह विनाशी ही होता है। कारण कि जब उत्तम से उत्तम कार्य का भी आरम्भ और समाप्ति होती है तो फिर उस कार्य से उत्पन्न होने वाला फल अविनाशी कैसे हो सकता है वह फल चाहे इस लोक का हो चाहे स्वर्गादि भोग भूमियों का हो उस की नश्वरता में किञ्चिन्मात्र भी फरक नहीं है।ऐसे तत्वविद ज्ञानी पुरुष को वेदाध्ययन, यज्ञ, दान एवम तप द्वारा किसी भी पुण्य की प्राप्ति की आवश्यकता नही रहती। अपने स्वरूप को प्राप्त होने के बाद एवम जब अविदित तत्व ही विदित हो गया तो अब किस को प्राप्त करना या जानना शेष रह जाता है।

हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि साधन एवम साध्य में क्या अंतर है। साध्य के लिये साधन की आवश्यकता रहती है किंतु साध्य प्राप्त होने के साधन आवश्यक नहीं। किसी स्थान पर जाने के कार का उपयोग करते है एवम उस स्थान पर पहुच कर कार को छोड़ देते है। बिना कार के आप गंतव्य स्थान को प्राप्त करने में विलंब करेंगे, इसलिये कार जरूरी है। परमतत्व को प्राप्त करने के यह तप, वेद, यज्ञ एवम कर्म जरूरी है किंतु परमतत्व प्राप्त होने के बाद इन का अतिक्रमण कर लिया जाता है।

सगुणाकार परमात्मा की भक्ति को साधन समझ कर निर्गुणकार परब्रह्म की आराधना ही साध्य है। अर्जुन के सात प्रश्नों के उत्तर को समझना और उस के अनुसार सगुणाकार की आराधना, पूजा, तप, दान पुण्य करते हुए, निर्गुणकार को प्राप्त करने का मार्ग सकाम से निष्काम भक्ति है। जो मनुष्य इस रहस्य को समझ जाता है, उस के कर्म फल क्षीण हो जाते है और वह यथा शीघ्र परमपद अर्थात मोक्ष को प्राप्त होता है।

परम तत्व को जानना, उस का ज्ञान प्राप्त करना, उस को सुन लेना या पढ़ लेना यह सब कर्म सरल है और हम सब इस को कर भी रहे है किंतु इस को आत्मसात करना एवम इस का बोध होना कठिन। इस के लिये निरंतर ध्यानाभ्यास होना चाहिए। ध्यानाभ्यास द्वारा व्यक्तित्व का संगठन उपर्युक्त यज्ञादि साधनों की अपेक्षा लक्षगुना अधिक सरलता एवं शीघ्रता से हो सकता है किन्तु यहाँ यह भी मानकर चलते हैं कि ध्यान के साधक में आवश्यक मात्रा में विवेक और वैराग्य दोनों ही हैं। सतत नियमपूर्वक ध्यान करने से इनका भी विकास हो सकता है। इस प्रकार जब योगी ध्यान साधना से निष्काम कर्म एवं उपासना का फल प्राप्त करता है और ध्यान की निरन्तरता बनाये रखता है तो वह सफलता के उच्चतर शिखर की ओर अग्रसर होता हुआ अन्त में इस आद्य अक्षर पुरुष स्वरूप मेरे परम धाम को प्राप्त होकर पुनः संसार को नहीं लौटता।

व्यवहार में हम सब इस संसार में यात्री है, यह संसार अर्थात प्रकृति अपने आप में अत्यंत सुंदर है। इस के क्षणिक और भौतिक सुख के आनंद से कोई इंकार नहीं कर सकता, परंतु उस के प्रति कामना और आसक्ति दुख का कारण भी हो सकती है और मुक्ति में बाधा भी। एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के जिस भी साधन का उपयोग हम करते है तो लक्ष्य साधने के लिए। यात्रा में असुविधा न हो, इसलिए सही साधन को लेते है। शेष यात्रा की मानसिकता में शांति और प्रफुल्लता हो तो यात्रा आनंद से भरपूर

होगी। रास्ते अच्छे और बुरे सभी मिलते है। अतः शरीर साधन है तो उसे स्वस्थ तन और मन से रखना होगा। बुद्धि से यात्रा को अधिक उपयोगी बना सकते है। लोकसंग्रह के कार्य करते हुए यदि आगे बढ़े तो यात्रा के साधन अर्थात शरीर और रास्ते के पड़ाव से मोह नहीं होगा। अतः दान - धर्म, तप, त्याग, निष्काम कर्म से यात्रा को करते हुए आनंद से पूर्ण करे और पूरी यात्रा में अपने लक्ष्य को ध्यान अर्थात मोक्ष के लिए परमात्मा के प्रति भक्ति भाव से समर्पित रहे। यही जीवन का उद्देश्य और लक्ष्य हो। फिर अपने वर्ण अर्थात स्वभाव और प्रारब्ध से जो भी कर्म मिले उसे प्रकृति द्वारा निमित्त मानकर कर्तव्य धर्म के अनुसार कार्य निष्काम और निर्लिप्त भाव से करे। सत गुण में आलस्य को कोई स्थान नहीं। निष्काम और निर्लिप्त होने का अर्थ यह नहीं है कि हम अपने कर्तव्य कर्म को अर्थहीन समझे। उस के लिए मेहनत, लगन, समर्पण और अभ्यास द्वारा श्रेष्ठ रहना ही हमारा कर्तव्य है। यही संयम, योग युक्त योगी ही पहचान है।

आठवें अध्याय के अंतिम श्लोक के बाद हम कल राजविद्या राजगुह्य योग नाम से नवमोऽध्याय को पढ़ेंगे।

।। हरि ॐ तत सत।।8.28।।

॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता ॥ अध्याय: ८ सारांश॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुनसंवादे अक्षर ब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः॥

|| ōṃ tatsaditi śrīmadbhagavadgītāsūpaniṣatsu brahmavidyāyāṃ yōgaśāstrē śrīkṛṣṇārjunasaṃvādē akṣarabrahmayōgō nāma aṣṭamō'dhyāyaḥ ||

भावार्थ:

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के श्रीकृष्ण- अर्जुन संवाद में 'अक्षरब्रह्म- योग' नाम का आठवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ ॥

॥ हरिः ॐ तत् सत् ॥

Summary of Bhagvad Gita Chapter 8:

In the seventh chapter, Shri Krishna gave a detailed description of Ishvara, and stressed the importance of recognizing the infinite aspect of Ishvara. The eight chapter took a bit of a detour from that topic. In the beginning of this chapter, Arjuna raised seven questions that Shri Krishna answered in this chapter. The key question was: “how does one attain Ishvara after death” which became the main topic of this chapter.

Shri Krishna began this topic by asserting that the thought of the time of death determines our fate. If that thought is of Ishvara, we will attain Ishvara. Since we will not know when our death occurs, he advised us to meditate upon our Ishvara throughout our life, so it automatically becomes our final thought. To help us cultivate this thought, Shri Krishna elaborated upon three types of meditation.

The first type of meditation was on the cosmic form of Ishvara and the second type was on the name of Ishvara, which is Om. Both these meditation techniques also required us to exercise control of our praana or life forces. Since this is beyond most of our capabilities, Shri Krishna recommended the third type of meditation which was much simpler. He advised us to remember Ishvara in any form but do so constantly throughout our life.

So then, what happens when we die? Shri Krishna said that the universe is like an infinite cycle of creation and dissolution, symbolically depicted as the day and night of Lord Brahma. Both day and night are each 4.32 billion years long. At the end of each day of Lord Brahma, all living and non-living beings become unmanifest. When the night of Lord Brahma ends, all those beings are manifest again. In other words, they are “frozen” at the end of the day and they “thaw” in the beginning of the day. This goes on infinitely.

Having known this, our state is pitiable. We are caught in this endless cycle of creation and dissolution. Only those beings who only put forth the effort come out of this endless cycle. They attain Ishvara transcends this cycle. So, urging us to take steps towards achieving liberation is the refrain of this chapter, and of the Gita as a whole.

Towards the end of the chapter, Shri Krishna enumerated the two paths that a jeeva or soul takes after death. The first path is the dark path which is attained by those who have performed good actions on this earth. They attain the abode of the moon (heaven). After exhausting the results of their actions, they return to this world and are reborn.

The second path is the bright path which is attained by those who have practised devoted meditation on Ishvara in addition to performing good actions. They attain the abode of Lord Brahma and remain there until its

dissolution when they are eventually liberation. We are encouraged to take up this path.

।। हिंदी समीक्षा ।।

आठवां अध्याय - अक्षर ब्रह्म योग

सारांश

सत्य की खोज नही की जाती, वरन उस को प्राप्त करना होता है, यह अनुसंधान भी नही है कि विभिन्न सत्य मिलते जाए। परमात्मा की खोज नही की जाती, उस को प्राप्त किया जाता है। परब्रह्म सत्य है, उस मे विलीन होना ही जीव का लक्ष्य है। इस मे संशय या विचार का स्थान कम साधना एवम तप का स्थान ज्यादा है। गीता में प्रत्येक तत्व का विवेचन चर्चा का विषय या वाद-विवाद का विषय नही है, यह आत्मसात का विषय है, अतः यह श्रद्धा और विश्वास के साथ अनुग्रहण करने का मार्ग है। जो अनुसंधान या भौतिक ज्ञान का विकास गीता के पठन के माध्यम से करते है, वह जड़ प्रकृति में राजसी गुण का ही विकास करते है। दुर्योधन भी ज्ञानी ही था, वह सब जानते हुए भी, अपनी प्रवृति के सामने नतमस्तक था। क्योंकि उस ने ज्ञान को पढ़ा था, आत्मसात नही किया था। गीता के लगभग अर्धभाग तक पहुचने के बाद अब श्रद्धा और विश्वास का मार्ग ही ज्ञान और भक्ति है जो मोक्ष की ओर ले जाता है। क्या अब भी हम कोई संशय रखते है या अर्जुन के समान अपनी प्रवृति परमात्मा की ओर मोड़ देते है, यह अब हम पर निर्भर है।

सप्तम अध्याय के अंत मे भगवान श्री कृष्ण ने कहा था कि अखिल कर्म, सम्पूर्ण अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत और अधियज्ञ को जो अंतकाल में भी मेरे ब्रह्मस्वरूप को जान लेता अर्थात यह समस्त ब्रह्म रूप मैँ ही हूँ, उसे ही योगयुक्त आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है, इसलिये अध्याय के आरंभ में अर्जुन द्वारा सात प्रश्न पूछे गए थे- यह ब्रह्म क्या है, अध्यात्म क्या है, सम्पूर्ण कर्म क्या है, ये अधिदेव, अधिभूत और अधियज्ञ क्या है एवम अंतकाल में आप किस प्रकार जानने में आते है कि कभी विस्मृत नही होते।

योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने बताया कि जिस का विनाश नही होता वही परब्रह्म है, स्वयं की उपलब्धि वाला परम् भाव अध्यात्म है, जिस से जीव माया के आधिपत्य से निकल कर आत्मा के आधिपत्य में हो जाता है वही अध्यात्म है। भूतों के वे भाव जो शुभ अथवा अशुभ संस्कारो को उत्पन्न करते है उन भावों का रुक जाना, विसर्ग या मिट जाना ही कर्म की संपूर्णता है। क्षर भाव ही अधिभूत है अर्थात नष्ट होने वाले ही भूतों को उत्पन्न करने में माध्यम है। भूतों के अधिष्ठाता ही अधिदेव है । इन मे परमपुरुष अधिदेव में ही हूँ। इस शरीर मे होने वाली समस्त क्रिया ही अधियज्ञ है अर्थात मैं ही यज्ञ का अधिष्ठाता हूं जिस में समस्त यज्ञ विलय होते है।

इस प्रकार् अंत काल मे शरीर को त्यागने वाले निष्काम स्थिर चित्त योगी में दो प्रकार अर्थात ज्ञानयोगी और ध्यान योग वर्गीकरण किया। अर्जुन को ज्ञानयोगी बन कर ह्रदय से भगवान श्री कृष्ण का स्मरण करते हुए युद्ध करने को कहा। व्यवहार में यही ज्ञान योग का मार्ग है जो हमे हमेशा अपने इष्ट का स्मरण करते हुए, निष्काम कर्म को प्रेरित करता है, जिस से कभी भी कर्म करते है अहम भाव की मैं कर्ता हूँ, जाग्रत न हो। ध्यानयोगी स्मरण की उच्च स्थिति है, जो ब्रह्म के स्वरूप में विलीन होने और उस

को अंत समय तक किस प्रकार प्राप्त करे। जिस से योगी क्रममुक्ति द्वारा विभिन्न लोक से होता हुआ, ब्रह्म को प्राप्त होता है।

अंतिम प्रश्न था कि अंत समय मे आप किस प्रकार जाने जाते है। भगवान ने बताया कि मृत्यु के समय जिस भी भाव से शरीर का त्याग किया जाता है उसे अगले जन्म में वो ही शरीर मिलता है। यह ' यथा मति तथा गति ' का सिंद्धान्तिक स्वरूप है। योगी पुरुष के लिए इस मे भगवान ने प्राण छोड़ते समय मन को हृदय में स्थित कर के आज्ञा चक्र ले जाते हुए ब्रह्मसिद्ध मार्ग से प्राण त्यागने की बात कही जो मुख्य तयः सांख्य योगी द्वारा संभव है। यह सांख्य योग पूर्व में ध्यान योग का ही एक भाग है। अन्य के लिये अनन्य स्मरण का मार्ग बताया है। भगवान ने घोषणा भी की है वो उन को स्मरण करने वालो के उपलब्ध है।

स्मरण के साथ निष्काम कर्मयोग की भी बात कही गयी है। स्मरण का अर्थ है योग धारणा में स्थिर रहते हुए भगवान के सिवा किसी भी अन्य का ध्यान नही रखना।

भगवान ने अक्षर ब्रह्म के बारे में बताया जिसे हम ॐ वाचक अक्षर से जानते है। निर्गुणकार योगी अपनी साधना द्वारा सीधे परम गति को प्राप्त होते है। किंतु सगुणाकार योगी के भगवान ने ब्रह्मलोक होते हुए प्राप्त होने का मार्ग बताया। सकाम योगी ब्रह्मलोक से वापस आता है निष्काम योगी ब्रह्मलोक के बाद परमगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार ऊर्ध्व गति, क्रम मुक्ति से अपुनरावृति से जीव पुनः जन्म नहीं लेता। किन्तु जब कामना से साथ योग किया जाता है अर्थात जो लोग पुण्य कमा कर सुख भोगना चाहते है उन के लिये पुनरवर्तन का मार्ग बताया गया है।

निर्गुण की उपासना के लिये सगुणाकार उपासना प्रणव अक्षर के द्वारा किस प्रकार की जाए कि सगुणाकार उपासना निर्गुणकार ब्रह्म की उपासना में परिवर्तित हो जाये। इहलोक से ब्रह्मलोक का समय असीमित होने के बावजूद नित्य नही है। इस सम्पूर्ण सृष्टि का आधार वही निर्गुणाकार पूर्ण ब्रह्म है जिस में सम्पूर्ण सृष्टि समाई हुई है, किन्तु ब्रह्म सम्पूर्ण सृष्टि से परे अविनाशी और नित्य है।

मनुष्य के 4 करोड़ 32 लाख दिन के बराबर ब्रह्मा का एक दिन बताया एवम दिन में सम्पूर्ण प्रकृति एवम ब्रह्मांड का सृजन होता है एवम रात्रि में इस का प्रलय हो जाता है। परमात्मा का निवास इस ब्रह्मलोक के बाद है जिसे प्राप्त करने के बाद जीव पुनः जन्म नही लेता।

इस बाद मृत्यु के काल एवम मार्ग का विवरण दे कर शुक्ल पक्ष मार्ग अर्थात देवयान मार्ग एवम कृष्ण पक्ष अर्थात पितृयान मार्ग का ज्ञान दिया। शुक्ल पक्ष निर्मलता एवम प्रकाश का द्योतक है, विवेक, वैराग्य, शम, दम, तेज एवम प्रज्ञा इस के 6 माह है। कृष्ण पक्ष कालिमा का द्योतक है एवम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवम मत्सर इस के 6 माह है। भगवान से कहा कि जो इन मार्ग को जानता है वो योगी वेद, यज्ञ, दान एवम तप आदि समस्त पुण्य कर्मों से ऊपर होता है।

यह शरीर अष्टधता प्रकृति से है, जिस में पंच महाभूत जड़ प्रकृति अग्नि, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी मृत्यु उपरांत यही रह जाते है। सूक्ष्म शरीर मे मन और बुद्धि से जनित कामनाएं, आसक्ति और मोह कर्मफलों जनित बन्धन से एक नया अव्यक्त सूक्ष्म शरीर जीवात्मा धारण कर लेती है, जिस का मृत्यु के पहले शरीर के संबंधों से कोई सरोकार नही रहता। जीवात्मा परब्रह्म का स्वरूप होने से अकर्ता, नित्य और साक्षी है किंतु कामना, आसक्ति, मोह एवम कर्मफलों से बने सूक्ष्म शरीर है बन्धन में शुक्ल या

कृष्ण पक्ष में अपने अपने कर्म फलों के अनुसार विभिन्न लोको में भ्रमण एवं अपने पुण्य फलों को भोग कर पुनः मृत्यु लोक आ जाती है। मन और बुद्धि नष्ट होने से पूर्व जन्म की कुछ भी बात याद नही रहती। अतः जड़ पदार्थ और लौकिक सम्बन्ध मात्र वर्तमान जन्म के शरीर के साथ ही रहते है। इन का राग-द्वेष ही सूक्ष्म शरीर का स्वरूप है। जो जीवात्मा मोह, कामना, आसक्ति और अहम से मुक्त होती है, वही कोई सूक्ष्म शरीर धारण नही करती और विभिन्न लोक में विचरण करते या सीधे परब्रह्म में विलीन हो जाती है। अर्जुन को जीव के वर्तमान और मृत्यु उपरांत का यह ज्ञान उस के मोह भंग करने के लिये दिया गया है कि जिसे वह सगे सम्बन्धी समझ कर कर्तव्य धर्म से बाहर होने की बात कर रहा है, वह जड़ प्रकृति के ही सम्बन्ध है। यह जड़ प्रकृति के छोड़ने या मृत्यु के बाद जीवात्मा कोई सम्बन्ध नही रखती।

ध्यान देने की बात है, यदि हम किसी की मृत्यु के उपरांत स्वप्न या विचार में उस व्यक्ति को देखते, सुनते या कार्य करते या आदेश देते महसूस करते है तो यह हमारे ही अवचेतन मन की सूक्ष्म धारणा या भ्रांति होती है। क्योंकि जड़ प्रकृति से बने शरीर मे अव्यक्त मन और बुद्धि के अवचेतन में अनेक ऐसी सूचनाएं और भावनाएं अंकित होती रहती है, जिन पर सदाहरणतयः हमारा योग के बिना कोई नियंत्रण नही होता।

गीता का आठवां अध्याय ज्ञान के दृष्टिकोण से महत्वपुर्ण है क्योंकि यह हमें हमारे जीवन का बोध कराता है कि हम जिस मार्ग पर चल रहे है वो सही है या गलत। सांसारिक मोह हमे अपनी उन जिम्मेदारियों में जकड़ अवश्य देता है जिस के रहते हमे इस संसार की एवम शरीर के लालन पालन की जरूरत अध्यात्म के ज्ञान से ज्यादा जरूरी लगती है। गीता ही एक मात्र ग्रंथ है जो कर्म पर अधिक ध्यान देता है इसलिये अपने मार्ग का निर्धारण, स्मरण द्वारा अनन्या भक्ति एवम निष्काम हो सांसारिक दायित्व का पालन करना हम सीखते है। काम करते वक्त यह हमारे मानसिक स्थिति को बताता है कि उस कार्य को हम निष्काम हो कर करे या कर्तृत्व भाव से। क्योंकि यदि हम जान बूझ कर वो ही दोहराते है तो यह संसार हमे बार बार आना पड़ेगा। गीता निठल्ले एवम आलसी लोगो के लिये नही है। यह घर बार को त्याग कर वन जाने वालों के लिये भी नही है। हमारी अपनी दिनचर्या का महत्वपूर्ण हिस्सा है कि कर्म करते हुए भी हम निष्काम हो कर सही मार्ग पर चले। गीता गलत रास्ते पर चलने वालो को कही भी डरा कर ज्ञान नही देती यह तो बस सही रास्ता बताती है जिस पर मुक्त होने की कामना रखने वालों को चलना है, नही तो पूर्णवर्तन का मार्ग तो सभी के लिये उपलब्ध है।

यदि हम ध्यान से गीता का अध्ययन कर रहे है तो अर्जुन युद्ध के लिए तत्पर था, किन्तु युद्ध भूमि में सगे संबंधियों को देख कर उसे अपनी अक्षमता एवम मोह का अहसास हुआ। इसलिये उस की भावनात्मक कमजोरी ने शारीरिक दुर्बलता का स्वरूप लिया और वह गलत निर्णय की ओर अग्रसर होते हुए, युद्ध त्याग कर वैराग्य की बाते करने लगा और तर्क द्वारा उसे सही सिद्ध करने लगा। एक अच्छे प्रवक्ता का गुण है कि श्रोता को समझ कर ज्ञान दे। इसलिये भगवान श्री कृष्ण ने प्रथम उस का उपहास कर के यह अहसास करवाया की जो वह सोच रहा है या बोल रहा है, वह गलत है। ज्ञानी व्यक्ति को ज्ञान को किस प्रकार और किन भावनात्मक स्थिति में रह कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ज्ञान के विभिन्न मार्गों की चरम सीमा क्या है। ज्ञान को धारण करने वाले व्यक्ति विशेष में क्या गुण होने चाहिये। फिर ज्ञान में हमे किताबी बाते नही पढ़ते हुए, अंतिम अर्थ या लक्ष्य जानना चाहिये। सम्पूर्ण ज्ञान को जाने बिना हम अपनी भावनात्मक सीमाओं में उस का विश्लेषण करते है और अपने हिसाब से अर्थ निकालते है। ज्ञान को

सम्पूर्ण गम्भीरता से योगी बन कर यदि समझे तो वह हमारी आसक्ति, कामना, मोह, राग-द्वेष से परे हमे क्या करना चाहिये, सही मार्ग दर्शन देगा। अतः इस अध्याय तक अर्जुन के मोह के निवारण तक निराकरण किया गया है जिस से अर्जुन मानसिक दुर्बलता एवम भावनात्मक कटिबद्धता से बाहर निकल कर ज्ञान को समझने के योग्य बने। हम सब अपने जीवन मे अर्जुन जैसे ही है, किन्तु गीता के सम्पूर्ण श्लोक के पाठ एवम कंठस्थ करने के बाद भी हम यदि अज्ञान में ही घूमते रहे, तो वास्तव में हम गीता पढ़ने के योग्य नही। इसलिये गीता बार बार पढ़ कर समझने योग्य ग्रन्थ है।

जब आप मंदिर में नई कीमती चप्पल पहन कर जाते है तो सब से पहले चप्पल को सुरक्षित स्थान पर खोलते है। मंदिर में प्रविष्ट कर के आप उस स्थान पर खड़े हो कर प्रार्थना करते है, जहां आप भगवान के दर्शन कर सके और चप्पल पर निगाह रख सके। फिर प्रार्थना करते है" त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।त्वमेव सर्व मम देवदेव।।" इस पर आप का आधा ध्यान चप्पल पर और आधा भगवान पर रहता है। अतः प्रार्थना किस के लिये मानी जाए। यही स्थिति गीता के अध्ययन में है, व्यापार, व्यवसाय, परिवार, समाज, धन, सुख, कामना, आसक्ति और अहम के साथ जब गीता का अध्ययन करते है, तो ध्यान किस पर है, यह महत्वपूर्ण है। गीता कर्तव्य धर्म का ज्ञान है, वह इन को त्यागने को नही कहती, वह बताती है कि हमे अपने कर्तव्य धर्म का पालन किस प्रकार करे। गीता अध्ययन की विशिष्टता को बतला रही है, जिस के कारण हम आगे परम् ज्ञान को प्राप्त करेंगे। यह क्रमबद्ध अर्जुन के शारीरिक, मानसिक एवम बौद्धिक विकास को परिपक्क कर रही है कि वह मोह को त्याग कर परमज्ञान को समझने लायक हो जाये। अब आगे परमज्ञान को भगवान श्री कृष्ण बतलाएगे। इस के लिये योगायुक्त होने को कहा गया है।

हमारा शरीर पंचभूतों से बना है किंतु इस के अंदर सुख, दुख का अहसास इंद्रियों और मन से होता है। फिर जो कुछ भी ज्ञानेद्रियां ग्रहण करती है, वह मन को बतलाती है और यह मन बुद्धि से उस के आनंद या दुख को महसूस करता है, अतः जो इस आनंद या कष्ट को भोगता है, वह मनोमय कोश होता है। संसार के दुख और सुख को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि यह शरीर यदि कर्म द्वारा मुक्ति का साधन है तो भोक्ता भी है। इसलिए प्रकृति का आनंद लेना एक बात है और उस आनंद के साथ कामना और आसक्ति रखना दूसरी बात। प्रकृति के आनंद को जो नहीं भोग कर अपना संबंध जी जीव परमात्मा से जोड़ता है, तो यही मनोमय कोश, आनंदमय कोश हो जाता है। इसलिए जीव को अपने स्वरूप को मनोमय और आनंदमय दोनों ही स्वरूप को स्वीकार करते हुए, कर्तव्य कर्म करना चाहिए।

वस्तुतः योग की यह स्थिति देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि का ब्रह्म के साथ योग है, जिस में जीव का अज्ञान की वह कर्ता है और प्रकृति के साथ उस का सम्बन्ध है, नष्ट हो जाता है। फिर उस के समस्त कर्म सृष्टि यज्ञ संचालन के कर्म हो जाते है और वह मात्र निमित हो कर अपने कर्तव्य कर्म का पालन करता है। इसलिये भगवान अर्जुन को योगयुक्त योगी होने को कहते है। वेदाध्ययन, यज्ञ, तप एवम दान में जो पुण्य फल कहा गया है, यह योगी तो सर्व कर्ता बुद्धि से छूटकर सर्वात्म हुआ सर्व के आदि स्थान को प्राप्त कर जाता है और इन सर्वफलों को पार कर जाता है।

।।हरि ॐ तत सत ।। अध्याय अष्टम सारांश ।।

==